चन्दामामा
दीवाली विशेषांक
6
as
M.T. KAchwa

कहा जाता है कि किसी समय शान्तिनगर नामक शहर में शान्तसिंह नाम का राजा था। उसकी रानी शान्तिमती सब तरह से उसके योग्य स्त्री थी। वे दोनों अपनी प्रजा को बहुत प्यार करते थे और अपनी सन्तान की तरह उनकी देखभाल करते थे। उनके एक ही लड़का था जिसका नाम धीरसिंह था।

राज करते करते शान्तसिंह अचानक चल बसा । उस समय धीरसिंह की उम्र छः बरस से ज्यादा न थी। इसलिए उसका मामा दुष्टपाल राज-काज देखने लगा। धीरे धीरे दुष्टपाल के मन में लोभ पैदा हुआ। उसने सोचा-"मेरा भाँजा बड़ा होकर फिर अपना राज वापस ले लेगा ! इसलिए किसी न किसी तरह इसको राज से निकाल देना चाहिए।" इस तरह उसके मन में बुरी नीयत पैदा हो गई। लेकिन ऊपर से वह झूठ-मूठ का प्रेम दिखाता रहा।

इस तरह चौदह साल बीत गए। धीरसिंह अब बीस साल का नौजवान हो गया था।

उसने सब तरह के हथियार चलाना सीख लिया था। उसकी बहादुरी देख कर दुश्मन लोग मन ही मन डरने लगे।

तब एक दिन शान्तिमती ने अपने भाई दुष्टपाल से कहा- "भैय्या ! इतने दिन तक तुमने कष्ट उठा कर राज-काज देखा। हम इसके लिए हमेशा तुम्हारे ऋणी रहेंगे। लेकिन अब तुम्हारा भाँजा बड़ा हो गया है। इसलिए राज्य का भार शीघ्र ही

उसे सौंप कर अब तुम निश्चिन्त हो जाओ।"

"बहन ! तुम्हारा कहना बिलकुल ठीक है। मैं भी यही सोच रहा था। लेकिन राजा बनने के पहले धीरसिंह को एक काम करना होगा। नहीं तो यह राज चौपट हो जाएगा। धीरसिंह के सिवा वह काम और कोई नहीं कर सकता। जब वह यह काम पूरा करके लौटेगा, तो मैं धूम-धाम से उसका राज-तिलक करा दूँगा।" दुष्टपाल ने अपनी बहन को इस तरह समझाया कि वह बेचारी आसानी से उसके जाल में फँस गई।

दूसरे दिन दुष्टपाल अपने मन्त्रियों को बुला कर धीरसिंह को मारने का उपाय सोचने लगा। उसके मन्त्री उससे भी बड़े दुष्ट थे। उनमें से एक को एक उपाय सूझा।

उसने कहा-"यहाँ से तीन सौ मील की दूरी पर पूरब में एक भयङ्कर राक्षस रहता है। वह राक्षस कैसा है, किस जगह रहता है, यह किसी को नहीं मालूम। बड़े बड़े शूर-वीरों ने जाकर उसे मारने की कोशिश की। लेकिन कोई कामयाब न हुआ। इतना ही नहीं। उनमें से एक भी जिन्दा लौट कर न आया। उस राक्षस को मारने के लिए धीरसिंह को भेजिए। विश्वास रखिए, वह कभी लौट कर नहीं आ सकेगा फिर आप निश्चिन्त होकर राज कीजिएगा।"

राजा को उसकी राय बहुत पसन्द आई। उसने तुरन्त धीरसिंह को बुलवाया और कहा-

"प्यारे भाञ्जे ! इतने दिन से तुम नाबालिग थे। इसलिए राज-काज मैं ही देखता था। लेकिन अब तुम सयाने हो गए हो। इसलिए मैंने तुम्हें राज सौंप देने का निश्चय कर लिया है। लेकिन इसके पहले तुम्हें एक काम करना होगा। जब तुम इस काम में कामयाब हो जाओगे, तब मैं अपनी लड़की से तुम्हारा ब्याह कर दूँगा और तुम्हें गद्दी पर बिठा दूँगा। सुना जाता है कि यहाँ से तीन सौ मील की दूरी पर पूरबी समुन्दर के किनारे एक मायावी राक्षस रहता है। वह हर साल किसी न किसी राज पर टूट पड़ता है और प्रजा को मार कर खा जाता है। इस तरह बहुत से राज चौपट हो गए हैं। मुझे मालूम हुआ है कि अब उसकी नजर हमारे सुखी राज पर पड़ी है। इस राज की रक्षा के लिए उसे मार डालना बहुत जरूरी है। तुम कल ही यहाँ से कूच करो और उस राक्षस को जीत कर उसका सिर काट लाओ। फिर

हमारे राज को कोई चिन्ता न रहेगी। तुम अस्तबल से अच्छा सा घोड़ा ले लो। मैं तुम्हें एक सुन्दर ढाल और एक तेज तलवार देता हूँ। इनकी सहायता से तुम उस राक्षस को मार कर शीघ्र ही लौट आओ।" यह कह कर उसने आशीर्वाद दिया।

तब धीरसिंह ने कहा-"अच्छा; मामू! मैं कल ही यहाँ से कूच कर दूँगा। एक साल के पहले ही राक्षस को मार कर लौट आऊँगा। अगर मैं इस मीयाद के अन्दर न लौटूँ, तो

समझ लेना कि खतरे में पड़ गया हूँ।" यह कह कर उसने राजा से छुट्टी ले ली।

दूसरे दिन धीरसिंह पीठ पर ढाल बाँध कर, कमर से तलवार लटका कर घोड़े पर सवार हुआ। उसने घोड़े को ऐंड लगाई और सरपट दौड़ाने लगा।

* * * * * * * *

इस तरह घोड़े पर सवार होकर जाते जाते धीरसिंह अनेकों जङ्गल-पहाड़, नदी-नाले पार करता चला। राह में उसने अनेकों कष्ट उठाए। यों वह बहुत दूर निकल गया। लेकिन कहीं उसे राक्षस का पता न चला। थोड़ी ही देर में धीरसिंह को एक बहुत बड़ा रेगिस्तान दिखाई पड़ा। जहाँ तक नज़र जाती थी बालू ही बालू दीख पड़ती थी। वहाँ आदमी और जन्तुओं का नामोनिशान भी न था।

अब धीरसिंह को शक हुआ कि वह राह भूल गया है। घोड़े पर से उतर कर वह वहीं एक जगह बैठ गया और सोचने लगा कि अब क्या किया जाए ? बेचारा इसी सोच में था कि इतने में किसी ने पीछे से उसकी पीठ पर थपकी दी। धीरसिंह चौंक पड़ा। उसने सोचा कि वह कोई राक्षस है। इसलिए झट से तलवार निकाल ली।

लेकिन वह तो एक बूढ़ा था। उसने कहा-"बेटा ! तुम कौन हो ? इधर कहाँ जा रहे हो ? यह जगह ख़तरनाक है। तिस पर तुम अकेले जा रहे हो ? शायद तुम राह भूल कर इधर आ निकले हो। मेरी बात मान कर अब भी तुम लौट जाओ ! नहीं तो बहुत कष्ट उठाओगे।"

तब धीरसिंह ने अपना सारा हाल कह सुनाया।

उस बूढ़े ने कहा-"ओ पगले ! उस राक्षस को तुम्हारे जैसे छोकरे नहीं मार सकते । उससे बड़े बड़े शूर-वीर हार मान कर लौट गए हैं। फिर तुम्हारी हस्ती क्या है ? क्यों नाहक अपनी जान गवाते हो ? मेरी बात मान लो और अभी घर लौट जाओ।"

मगर धीरसिंह ऐसे मानने वाला नहीं था। "यह नहीं हो सकता। मैंने अपने मामू से वादा किया है कि मैं यह काम पूरा किए बिना घर नहीं लौहूँगा। चाहे जान रहे या जाए ! हमारे वंश के लोग अपना वादा कभी नहीं तोड़ते। उस राक्षस को मारे बिना मैं घर नहीं लौहूँगा।" उसने जवाब दिया।

उस राजकुमार की साहस भरी बातें सुन कर उस बूढ़े को बड़ा अचरज हुआ। उसे दुष्टपाल पर गुस्सा आया कि उसने इस नौजवान को ऐसे ख़तरनाक काम पर क्यों भेज दिया? जरूर उसने इस बेचारे को खतम करने की नीयत से ही यहाँ भेजा है। इसलिए कोई ऐसा उपाय करना

चाहिए जिससे उस दुष्ट की अक्ल ठिकाने आ जाए। बूढ़े ने यों सोच कर धीरसिंह से कहा-"बेटा! तुम बहुत कठिन काम पर जा रहे हो। इसमें मैं भी तुम्हारी मदद करूँगा। लेकिन पहले मुझे यह तो बताओ कि तुम्हारे पास कौन कौन से हथियार हैं?"

"मैं यह ढाल-तलवार लाया हूँ ।" यह कह कर धीरसिंह ने वे दोनों चीजें बूढ़े को दिखाई।

उन्हें देख कर बूढ़ा खिलखिला कर कहने लगा- "वाह ! वाह! कैसे हथियार लाए

हो ? मालूम होता है कि बाबा आदम के जमाने के हैं। क्या इन्हीं के सहारे तुम राक्षस को मारने चले हो ?"

यह सुन कर धीरसिंह ने अपना मुँह लटका लिया।

तब बूढ़े ने कहा- "अच्छा, तुम फिक्र न करो। यहाँ से चलने के पहले ढाल को अच्छी तरह माँज कर चमका लो। उसको इस तरह माँजो कि आइने की तरह तुम को अपना मुँह उसमें दिखाई पड़े।"

धीरसिंह ने अपनी ढाल-तलवार को ऐसा माँजा कि वे शीशे की तरह चमकने लगीं। यह देख कर वह बूढ़ा बहुत खुश हुआ। उसने धीरसिंह की पीठ ठोंक कर कहा-"हाँ, तुम काम तो खूब मन लगा कर करते हो।"

इसके बाद वे दोनों वहाँ से चले । आगे आगे बूढ़ा चला और उसके पीछे घोड़े पर सवार धीरसिंह चलने लगा । पर चलते चलते बूढ़ा एकाएक गायब हो गया।

यह देख कर धीर सिंह घबरा गया। उसने चारों ओर देखा। लेकिन बूढ़े का कहीं पता न था। इतने में सौ गज की दूरी पर बूढ़ा हवा में उड़ता दिखाई दिया। "यह कैसा अचरज है ? मेरे साथ आते आते यह बूढ़ा पञ्छी की तरह उड़ने कैसे लग गया ? यह सोच कर धीरसिंह ने ध्यान से बूढ़े की तरफ देखा । उसे मालूम हुआ कि बूढ़े के जूतों में पंख लगे हैं। उसने मन में कहा- "बात यह है ?" अब उसने अपने घोड़े को जोर से दौड़ाना शुरू किया। लेकिन बहुत कोशिश करने पर भी वह बूढ़े के पास नहीं पहुँच सका।

यों हवा में उड़ते उड़ते बूढ़े ने पीछे फिर कर देखा और मजाक उड़ाते हुए कहा- "क्यों भाई ! तुम तो घोड़े पर सवार हो। फिर पिछड़ क्यों गए? क्या यही है तुम्हारी वीरता?

बूढ़े ने सोचा था कि उसकी करामात का रहस्य धीरसिंह को बिलकुल नहीं मालूम है।

अगर मैं भी तुम्हारी तरह पंख वाले जूते पहन लूँ, तो फिर घोड़े की जरूरत नहीं होगी। तब देखना, कौन पिछड़ता है ?' धीरसिंह ने जवाब दिया।

"ओहो, तो तुम पर मेरा रहस्य खुल गया ? तुम्हारी बुद्धि तो बड़ी तेज है। लेकिन मैं जूते कहाँ से लाऊँ ? इसलिए लो, मेरी छड़ी पकड़ लो ! तुम भी मेरी तरह हवा में उड़ने लगोगे ।" यह कह कर बूढ़े ने अपनी छड़ी नीचे फेंक दी। वह छड़ी हाथ में लेते ही धीरसिंह भी हवा में उड़ने लगा।

उड़ते उड़ते उसने बूढ़े से पूछा- "अब तुम मुझे उस राक्षस का हाल बताओ न ?"

तब बूढ़े ने यों कहना शुरू किया - "वह कोई मामूली राक्षस नहीं है। उसका सारा बदन लोहे का बना हुआ है। उसे किसी अस्त्र से नहीं छेदा जा सकता। उस राक्षस की डाढें बड़ी डरावनी हैं। उसके तीन सिर हैं। लेकिन सिर पर बालों की जगह अनगिनत जिन्दा साँप फुफकारते रहते हैं। उसके सुनहरे चमकीले पंख भी हैं। उनकी सहायता से वह आसमान में उड़ सकता है। लेकिन सबसे अचरज की बात तो यह है कि जो उस राक्षस की ओर देखता है वह पत्थर बन जाता है। इसलिए उस राक्षस के पास पहुँचना ही बहुत मुश्किल है। अगर तुम वहाँ पहुँच गए तो भी तुम्हें आँख मूँद कर उसकी ओर देखे बिना ही उसे मार डालना होगा। बोलो, क्या तुम यह काम कर सकते हो ? अगर नहीं कर सकते हो तो तुम अब भी घर लौट सकते हो। कोई हर्ज नहीं है।"

यह सुन कर धीरसिंह ने कहा - "मैंने पहले ही कह दिया है कि मैं कायर नहीं हूँ। अब वापस लौटना असम्भव है। चाहे इस कोशिश में मेरी जान ही क्यों न चली जाए !"

"तब तो हमें पहले तीन अन्धों के पास जाना होगा। वे ही बता सकते हैं कि राक्षस को मारने का आसान तरीका क्या है ?" बूढ़े ने कहा।

"ये तीन अन्धे कौन हैं ? वे कहाँ रहते हैं ?" धीरसिंह ने बड़ी उतावली से पूछा।

[वे तीन अन्धे कौन थे ? उन्होंने क्या सलाह दी ? उसके बाद क्या हुआ ? वगैरह बातें अगले महीने के चन्दामामा में पढ़िए।]

किसी घने जङ्गल में एक शेर रहता था। वह उस जङ्गल के सभी जानवरों का राजा था। इसलिए जङ्गल के सभी जीव-जन्तु उससे डरते थे और उसका हुक्म मानते थे। इसका नतीजा यह हुआ कि उस शेर को बेहद घमण्ड हो गया।

वह अब खूब मनमानी करने लगा और सब जानवरों को बहुत सताने लगा । लेकिन जङ्गल के जानवरों में किसी ने चूँ तक नहीं की। किसी में इतना साहस न था कि शेर को समझाए और बुरी राह पर चलने से रोके।

एक रात गहरे अँधेरे में शेर गरजता हुआ खुराक की खोज में निकला। उसके गरजने की आवाज सुनते ही सभी जानवर थर-थर काँपते हुए इधर-उधर भाग गए। यहाँ तक कि डर के मारे पेड़ों पर से चिड़ियाँ भी उड़ गईं।

शेर की गरज से एक मक्खी जो एक तिनके पर आराम से सो रही थी, जाग उठी । उसने उठ कर अँगड़ाई लेते हुए कहा - "क्या शोर-गुल है यह?"

यह बात जब शेर ने सुन ली तो उसने सोचा- "यह कौन बदतमीज है जो बिलकुल मेरी परवाह नहीं करती ?"

वह क्रोध के साथ उस दुष्ट को दण्ड देने के लिए दौड़ा। इस तरह दौड़ता हुआ शेर जब मक्खी के नजदीक आया, तो उसने उसे रोक कर कहा- "ठहरो! ठहरो! तुम कौन हो जो इस तरह आधी रात के वक्त हल्ला मचा कर सबकी नींद खराब कर रहे हो ? क्या तुमने समझ लिया है कि इस

जङ्गल के सब लोग दब्बू हैं और तुम्हारी शरारत चुपचाप सह लेंगे ?"

ये बातें सुनते ही शेर आग-बबूला हो गया। उसने कहा-"तू कौन है मुझे रोकने वाली ? तेरी क्या हैसियत है जो मुझसे सवाल-जवाब करती है ? क्या तुझे मालूम नहीं कि जङ्गल का राजा शिकार खेलने के लिए निकला है ? क्या तुझे मालूम नहीं कि तू किस से बातें कर रही है ?"

तब मक्खी ने जवाब दिया-"अगर तुम राजा हो तो चुपचाप अपने महल में जाकर बैठो ! आधी रात के समय शोर-गुल मचाने से कोई चुप नहीं रहेगा। हर एक को अपनी हैसियत जान लेनी चाहिए। चाहे राजा हो या रङ्क !"

तब शेर ने गरज कर कहा-"क्या तू मुझे उपदेश देने चली है ? तूने राजा को क्या समझ रखा है ? राजा मनमानी कर सकता है । वह जिसे चाहे उसे हड़प सकता है। उसे कोई नहीं रोक सकता।"

तब मक्खी ने हँसते हुए कहा-"तुमसे किसने कहा कि तुम राजा हो ? क्या तुम समझते हो कि सब लोग तुम्हारी दाढ़ी-मूँछें देख कर डर गए; इसलिए तुम राजा हो गए ? जान लो, मैं तुमसे बिलकुल नहीं डरती। अगर तुम सचमुच राजा हो तो आओ ! मुझ से लड़ कर जीत तो लो, देखें !" उसने शेर को ललकारा।

तब शेर ने क्रोध से मुँह बाकर एक जोर की साँस छोड़ी। जिस तिनके पर मक्खी बैठी हुई थी वह भी काँप उठा। लेकिन मक्खी बिलकुल नहीं डरी।

उसने कहा- "ओ जङ्गल के राजा ! आओ, मुझ से लड़ो ! आज तुम्हें छठी का

दूध याद दिला दूँगी। अगर तुम मुझसे नहीं लड़ोगे, तो मैं जाकर दुनियाँ भर ढिँढोरा पीट दूँगी कि तुमने डर के मारे मुझसे लड़ने से इनकार कर दिया ! तब सब लोग तुम्हारी खिल्ली उड़ाएँगे।"

"मैं तुझसे क्यों डरूँ ? तुझ जैसी हजारों मक्खियों को मैं अपने पञ्जे की एक ही चोट से चटनी बना सकता हूँ।" यह कहते हुए शेर पञ्जा उठा कर मक्खी पर झपटा।

लेकिन उसके पहले ही मक्खी उड़ी और शेर के नथुने में घुस गई। वह अन्दर जाकर जोर जोर से काटने लगी। वह घमण्डी शेर क्रोध से पागल हो गया।

लेकिन बेचारा करे तो क्या ? वह खूब उछला-कूदा, लपका-झपका, गरजा लरजा, खाँसा-छीङ्का। चीख-चिल्ला कर उसने सारा जङ्गल सिर पर उठा लिया। आखिर लाचार होकर जमीन पर अपना सर भी पटकने लगा। लेकिन कोई नतीजा न निकला। मक्खी बाहर न निकली।

शेर का सर चकरा गया। दिमाग में मक्खी के भिन्नाने से उसे ऐसा मालूम हुआ जैसे वह पागल हो जाएगा।
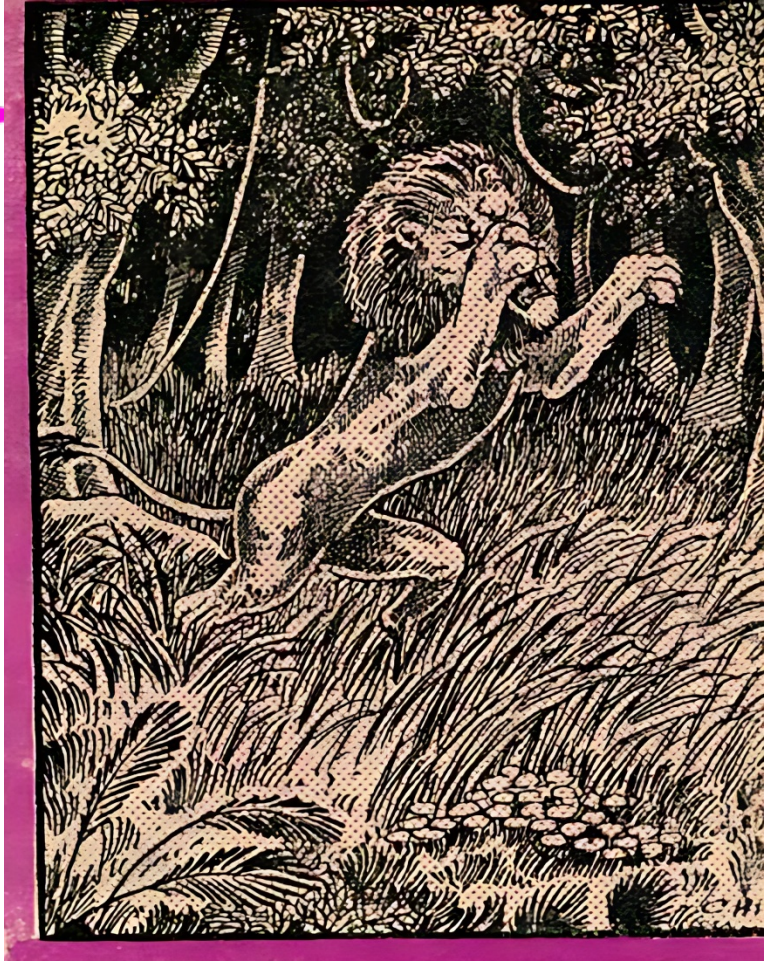
लेकिन कर क्या सकता था ? कोई उपाय न सूझा। आखिर उसने गिड़गिड़ा कर कहा- "मक्खी रानी ! मक्खी रानी ! तू ही जीती; मैं हारा। अब मुझे छोड़ दे। तेरे पाँव पकड़ता हूँ।"

तब मक्खी हँसती हुई बाहर निकली और बोली-"अजी जङ्गल के राजा ! तुम्हें अक्ल आ गई न ? अच्छा, जाओ ! कमजोरों को कभी न सताना !"

यह कह कर मक्खी फिर अपने तिनके पर जाकर सो गई। उस दिन से शेर मक्खी का नाम सुनते ही डर से काँपने लगता है।
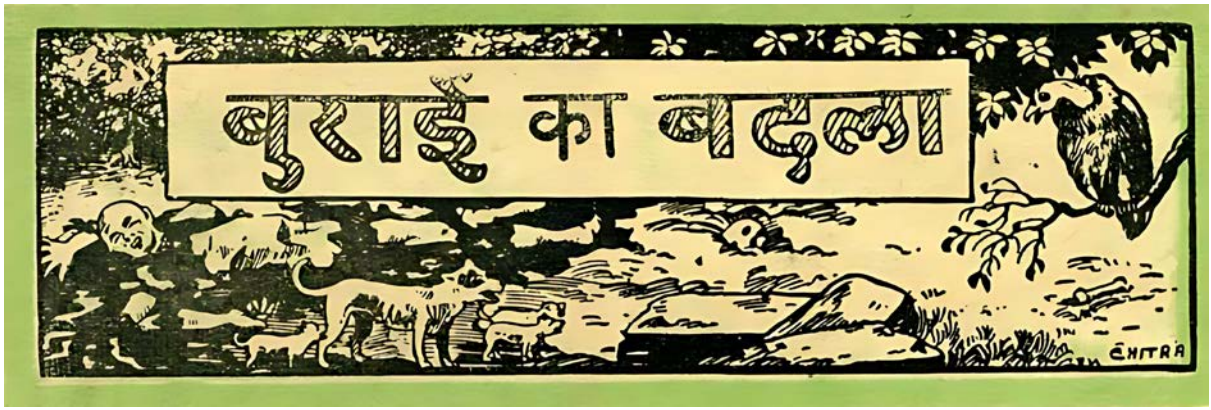
लोग कहते हैं कि किसी समय मधुपुर नामक नगर में विरूपाक्ष नामक एक राजा राज करता था। एक दिन की बात है कि दो सिपाही एक आदमी को हाथ-पैर बाँध कर उस नगर के मरघट में ले आए और वहाँ उसकी बोटी बोटी काट कर चले गए। इतने में माँस की लालच से एक कुतिया अपने पिल्लों के साथ वहाँ आई। शायद वे सब बहुत भूखे थे। सब ने तुरन्त एक एक टुकड़ा मुँह में दबा लिया। लेकिन कुतिया ने तुरन्त वह टुकड़ा थूक दिया और पिल्लों को भी खाने से मना कर दिया। उसने कहा-"यह कृतघ्न का माँस है। कृतघ्नता से बढ़ कर कोई नीचता नहीं। इसलिए बच्चो ! कृतन का माँस कुत्तों को भी नहीं खाना चाहिए।"

उसी समय एक गिद्ध भी माँस की लालच से उड़ता हुआ आकर वहाँ बैठा। लेकिन मुर्दे का मुँह देखते ही उसने भी घृणा से मुँह फेर लिया और उड़ चलने के वास्ते पंख फैलाने लगा।

तब कुतिया ने उससे पूछा- "क्या तुम इस कृतघ्न को पहचानते हो ?"

"अच्छी तरह पहचानता हूँ। इसी ने हमारे पक्षि-राज नाडीजङ्घ को मार डाला।" उस गिद्ध ने जवाब दिया।

यह सुन कर कुतिया ने रोते हुए कहा- "हाय ! क्या नाडीजङ्घ मर गया ? ओह ! क्या इसी दुष्ट ने उसे मार डाला ?"

तब गिद्ध बोला – "हाँ, इसी ने उसे मार डाला। उस समय मैं भी उसी बरगद के पेड़ पर रहता था। चार

दिन पहले इस दुष्टने सबेरे आकर उस पेड़ के नीचे बैठ कर रोना शुरू किया। बस, बेचारे कोमल हृदय वाले नाडीजङ्घ तुरन्त नीचे आ गए और बोले-"कहो, तुम कौन

हो ? क्यों इस तरह रो रहे हो ? तुम किस मुसीबत में पड़ गए हो ?" तब इस दुष्ट

ने कहना शुरू किया- "मैं एक गरीब ब्राह्मण हूँ।"

ब्राह्मण का नाम सुनते ही कुतिया ने आश्चर्य से कहा –"तो क्या यह ब्राह्मण है ? फिर इसने ऐसा नीच काम क्यों किया ?"

यह सुन कर गिद्ध ने कहा-"यह जन्म से ब्राह्मण तो था । लेकिन इसने अपनी जात छोड़ दी थी। व्याधों के साथ रह कर इसने माँस खाना और शराब पीना भी सीख लिया था। उसने उसी जात की एक औरत से ब्याह भी कर लिया था।

लेकिन यह आलसी होने के कारण काम-काज कुछ न करता । हमेशा निठल्ला बैठा रहता। उसकी स्त्री ही
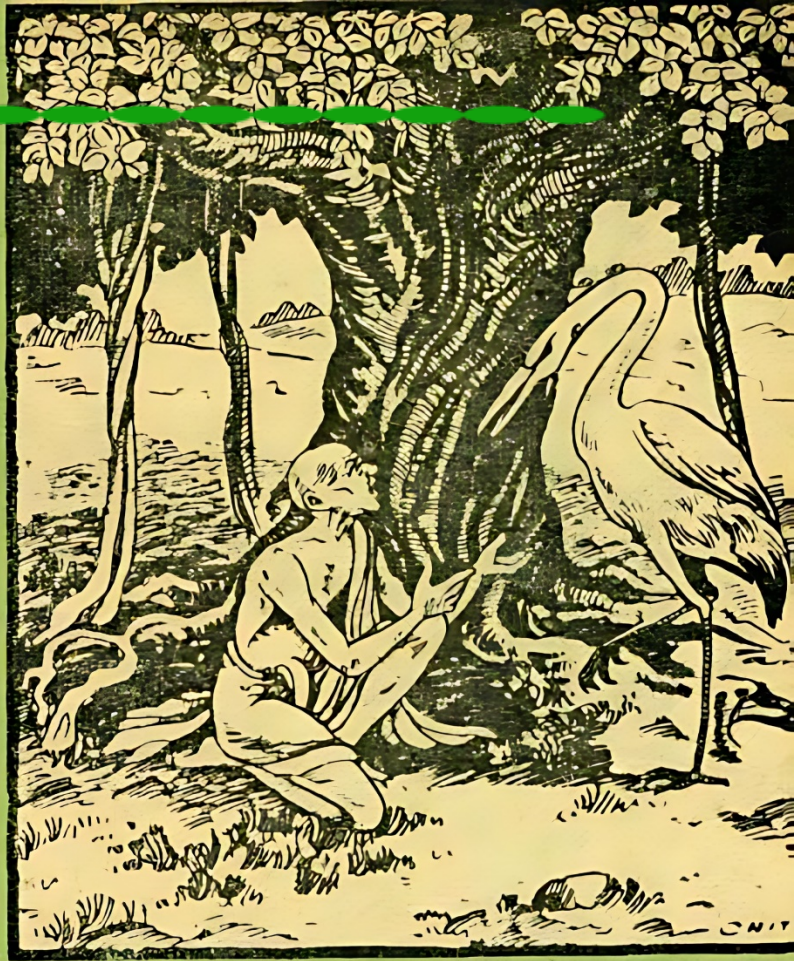
अपनी कमाई से उसे खिलाती। कुछ दिन बाद उस औरत ने इससे कहा- 'मैं कितने दिन तक कमा कर तुम्हें खिलाती रहूँगी ? जाओ, कहीं से कुछ कमा लाओ।'

तब यह ब्राह्मण घर से निकला और राह में हमारे बरगद के नीचे आकर बैठ गया।

नाडीजङ्घ ने इस पर तरस खाकर कहा-'हे ब्राह्मण ! मधुपुर का राजा विरूपाक्ष मेरा मित्र है। तुम उसके पास जाकर मेरा नाम लो। तुरन्त वह तुम्हारी गरीबी दूर करेगा।' यह कह कर उसने इसे वहाँ से भेज दिया ।"
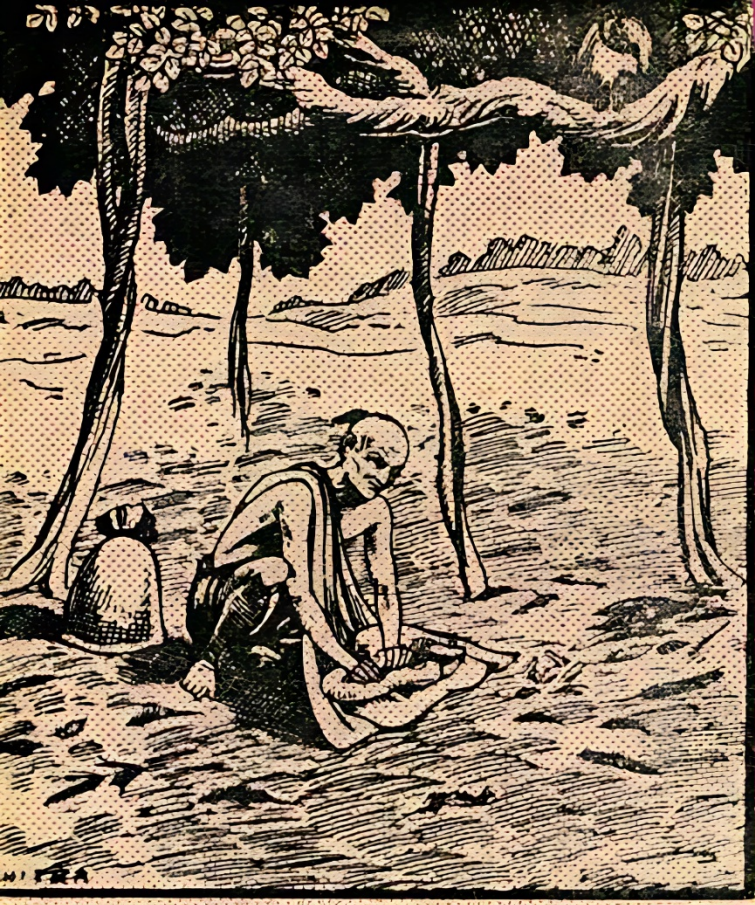
फिर क्या हुआ ?' कुतिया ने बड़ी उतावली से पूछा।

यह ब्राह्मण वहाँ से चल कर राजा विरूपाक्ष के यहाँ जा पहुँचा। राजा ने नाडीजङ्घ का नाम सुनते ही इसका बहुत सत्कार किया और बहुत-सा धन दिया । तीसरे दिन यह ब्राह्मण माला-माल होकर फिर हमारे बरगद के नीचे आया।

उसे देख कर नाडीजङ्घ को बहुत खुशी हुई। उसने उसे खिलाया पिलाया और आराम करने को कहा। थोड़ी देर में हम सब लोग सो गए। रात में जो कुछ हुआ उसका हमें स्वप्न में भी अनुमान न था। सबेरे जब हमने उठ कर देखा तो क्या कहा जाए ! यह पापी नाडीजङ्घ को मार कर उसका माँस एक पोटली में बाँध रहा था। गीध ने आँसू बहाते हुए कहा।

"अरे! इस पापी ने क्या किया ? जिसने इसकी भलाई की, उसी की ऐसी बुराई ? जिस पत्तल में खाया उसी में छेद कर दिया ? इसने ऐसा क्यों किया ?"कुतिया ने पूछा।

"माँस की लालच से। जीभ के चटोरेपन कारण।" हमने जब पूछा तो इसने यही कहा ।

"क्या कहा ?"

"यही कि, यह बगुला खूब मोटा-ताजा है। इसका माँस खाने में बहुत स्वादिष्ट होगा। राह में खाने पीने की कोई दिक्कत न हो, इसलिए मैंने इसे मार डाला।" इसने हम से कहा।

"तो तुम सब चिड़ियों ने मिल कर इसे नोच-नोच कर मार क्यों नहीं डाला ?"

"हम सब इसकी दुष्टता देख कर डर गए थे। ज्ञानियों ने कहा भी है कि दुष्टों से दूर रहना चाहिए। फिर हम इसका क्या कर सकते थे? इसलिए हमने एक तोते के द्वारा राजा विरूपाक्ष के पास यह खबर भेज दी।

जब तक राजा के सिपाही आए, तब तक यह दुष्ट भाग गया था। आखिर उन्होंने कहीं से उसे पकड़ लिया और उसकी करनी का मजा चखा दिया। राजा ने इसे दण्ड देकर बहुत अच्छा किया।"

गिद्ध और कुतिया में यों बातचीत हो रही थी कि इतने में राजा विरूपाक्ष दल-बल के साथ उस मरघट में आए। राजा के सिपाहियों ने वहाँ चन्दन की एक चिता सजाई। फिर राजा ने अपने हाथों से नाडीजङ्घ की हड्डियाँ वगैरह चुन कर चिता पर रख दीं और दाह-संस्कार पूरा किया। यह सब देख कर गिद्ध ने कुतिया से कहा-"देखी तुम ने उन दोनों की मित्रता ? राजा बरगद के पेड़ के नीचे से अपने मित्र की हड्डियाँ मँगवा कर प्रेम से दहन कर रहा है।"

उसी समय आसमान से एक विमान नीचे उतरा। उसमें से एक देवता ने बाहर आकर कहा-"हे राजा ! मैं देवराज इन्द्र हूँ। मैं नाडीजङ्घ के प्रति तुम्हारी मित्रता देख कर प्रसन्न हो गया हूँ। मैं भी तुमसे मित्रता जोड़ना चाहता हूँ । इसलिए तुम मुझसे कोई मनचाहा वर माँग लो।"

तब विरूपाक्ष ने कहा- " हे देव - राज ! नाडीजङ्घ के बिना मैं नहीं जी सकता। इसलिए कृपा करके तुम मेरे मित्र को जिन्दा कर दो।"

तब इन्द्र ने उस राजा की बड़ाई करते हुए नाडीजङ्घ को जिन्दा कर दिया। तब विरूपाक्ष ने अपने मित्र बगुले से सारा किस्सा कह दिया और जमीन पर पड़े हुए उस ब्राह्मण के सिर की ओर इशारा किया।

लेकिन नाडीजङ्घ उस सिर को देख कर रोते हुए कहने लगा-"हाय ! महाराज आपने इसे क्यों मरवा दिया ?"

तब विरूपाक्ष ने आश्चर्य से कहा-"मित्र ! तुम यह क्या कह रहे हो ? तुम नहीं जानते कि यह कैसा दुष्ट है। यह जन्म से ब्राह्मण था । लेकिन अपने कर्मों से चाण्डाल से भी गया-बीता था। मैं ऐसे कृतघ्न को दण्ड दिए बिना कैसे रहता ?"

तब नाडीजङ्घ ने जवाब दिया-"महाराज ! जो जैसा करता है, वह वैसा ही भोगता है। हर एक को अपने पापों का फल भुगतना पड़ता है। इसलिए मैं नहीं चाहता कि यह ब्राह्मण मेरे कारण मारा जाए।"

"क्या कहते हो तुम ? कहीं बुराई करने वालों को भी भलाई की जाती है ?" राजा ने पूछा।

"भलाई करने वालों की भलाई तो हर कोई करते हैं। बड़प्पन तो इसी में है कि बुराई करने वालों की भी भलाई की जाए।" नाडीजङ्घ ने जवाब दिया।

बगुले की ये बातें सुन कर इन्द्र को बेहद खुशी हुई। उसने ब्राह्मण को भी जिन्दा कर दिया। जब ब्राह्मण को मालूम हुआ कि कृतघ्नता के कारण उसने जिस बगुले की

जान ली थी उसी की कृपा से फिर उसको जीवन-दान मिला है, तब वह बहुत शरमा गया। तब से उसने अपना सारा जीवन पूरी तरह सुधार लिया।

पुराने जमाने की बात है। मगध देश में धर्मगुप्त नामक एक राजा राज करता था। उसकी एक ही लड़की थी। रूप और गुण में उसकी बराबरी करने वाली कोई न थी। राजा अपनी बेटी को देख कर फूला न समाता था।

उसने उसका नाम चन्द्रमुखी रखा। राजा के किले में देवी का एक मन्दिर था। बचपन से ही रोज़ चन्द्रमुखी उस मन्दिर में जाकर देवी की पूजा करने लगी। दिन दिन देवी पर उसकी भक्ति बढ़ने लगी। इसलिए जब वह सयानी हुई तो राजा ने प्रतिज्ञा की- "मैं अपनी लड़की का ब्याह किसी सुशील और ईश्वर भक्त राजकुमार से करूँगा।"

चन्द्रमुखी की सुन्दरता का बखान सुनकर कुछ ही दिनों में देश देश के राजकुमार उससे ब्याह करने के लिए आने लगे। लेकिन उनमें से एक भी ऐसा न था जिसमें कोई दोष न हो। इसलिए राजा ने किसी को पसन्द न किया। सब लोग निराश होकर लौट गए।

आखिर एक दिन चन्द्रमुखी अपने महल में यों सोच करने लगी- "क्या मेरे योग्य राजकुमार कभी मिलेगा या मुझे जिन्दगी भर कुँआरी ही रहना होगा?"

इतने में उसे क़िले में कोई शोर-गुल सुनाई दिया। तब राजकुमारी ने सोचा- "यह शोर-गुल कैसा है? जरूर कोई न कोई नया राजकुमार आया है। मेरा मन कहता है कि यह मेरे योग्य होगा।"

इतने में सखियों ने दौड़ते हुए आकर चन्द्रमुखी को घेर लिया और नए आए हुए कलिङ्ग देश के राजकुमार के बारे में बातचीत करने लगीं।

इतने में मन्त्री आकर आदर के साथ राजकुमारी को उसके पिता के पास बुला ले गया। राजा ने प्रेम से उसका सिर सहलाते
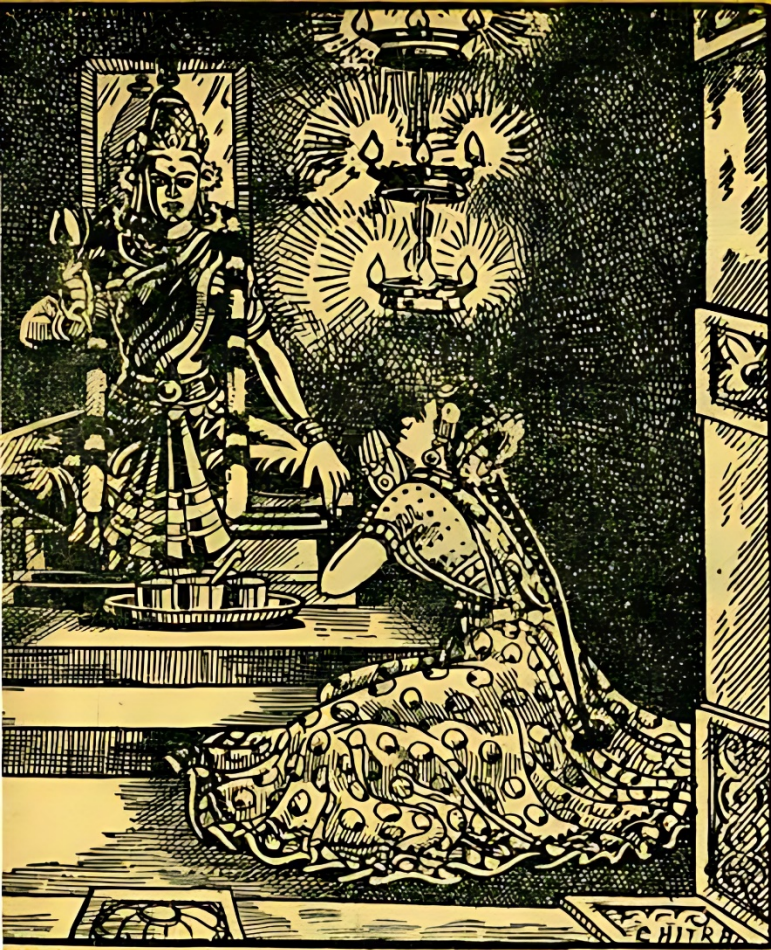
हुए कहा- 'बिटिया ! आज तेरे योग्य वर मिल गया!" यह कह कर उसने कलिङ्ग के राजकुमार का सारा हाल सुना दिया।

पिता की बातें ध्यान से सुनने के बाद चन्द्रमुखी ने कहा- "पिताजी! मुझे आपका कहना पसन्द आया। लेकिन एक ही शक है । क्या यह राजकुमार मेरी देवी की भेंट के लिए कोई अमूल्य वस्तु ला सकता है ?"

राजकुमारी ने देवी के प्रति भक्ति के कारण मन ही मन प्रण कर लिया था कि जो राजकुमार एक-न-एक दुर्लभ वस्तु लाकर देवी को प्रसन्न करेगा, उसी से मैं शादी करूँगी। तब राजा ने कहा -"बेटी ! यह राजकुमार स्वयं देवी-देवताओं का बड़ा भक्त है। यह देवी को जरूर प्रसन्न करेगा।"

तब राजकुमारी ने सर झुका कर पिता का कहना मान लिया। फिर अच्छी साइत देख कर धूम-धाम से दोनों का ब्याह कर दिया गया।

ससुराल जाते वक्त राजकुमारी ने मन्दिर में जाकर देवी की पूजा की और हाथ जोड़ कर

कहा- "माँ ! कलिङ्ग के राज की सब से अमूल्य वस्तु लाकर मैं तुम्हें भेंट करूँगी।"

अपने पति के घर जाने के बाद कुछ दिन तक राजकुमारी बड़े सुख से रही। देवी को एक अमूल्य वस्तु भेंट करने का जो प्रण उसने किया था, उसे वह भूली नहीं थी । लेकिन राजकुमार राज-काज में पड़ कर उसकी बात ही भूल गया था। राजकुमारी को यह न सूझा कि वह अपने पति को कैसे इसकी याद दिलाए ? इसलिए धीरे धीरे चिन्ता ने उसे घेर लिया और वह दिन-दिन दुबली होने लगी ।

एक दिन उसके पति ने उससे पूछा- "तुम आजकल हर वक्त किसी सोच में पड़ी रहती हो। मुझे बताओ न, कारण क्या है ?"

राजकुमारी ने कहा-"मैंने देवी से जो वादा किया था, वह अब तक पूरा नहीं हुआ। इसीलिए चिन्ता हो गई है।"

तब राजकुमार ने कहा- "इसके लिए चिन्ता करने की क्या जरूरत है? अभी ढिँढोरा पिटवा कर राज भर की सभी अमूल्य वस्तुएँ मँगता हूँ। तुम उनमें से जो चाहो चुन कर देवी को भेंट कर देना।"

यह कह कर उसने राज भर के सभी बड़े-बड़े व्यापारियों को बुलवाया। वे लोग तरह तरह की बेशक़ीमती चीजें लेकर राजकुमार के सामने हाजिर हुए। चन्द्रमुखी ने उनमें से एक हीरा पसन्द कर लिया ।

उस हीरे का नाम "दीप-मणि" था। उसकी रोशनी दूर दूर तक पहुँचती थी। रात में वह हीरा जहाँ पड़ा रहता उस ज़गह इतना उजियाला हो जाता; मानों लोग दीपावली मना रहे हों। वह जिस मन्दिर या महल में रहता वहाँ फिर दिए जलाने की जरूरत न थी। क्योंकि हीरे की वजह से वहाँ दिन का सा प्रकाश छाया रहता।

राजकुमार को यह देख कर बहुत खुशी हुई कि उसकी पत्नी को मन लायक चीज़ मिल गई। उसने लाखों

अशर्फियाँ देकर वह हीरा खरीद लिया। चन्द्रमुखी भी फूली न समाई। उसकी सारी चिन्ता दूर हो गई। उसने मन ही मन देवी को धन्यवाद दिया कि उसे ऐसा अच्छा पति मिला। क्योंकि राजकुमार उसको खुश करने के लिए और तो क्या, आसमान के तारे भी तोड़ लाने को तैयार था ।

फिर उन दोनों ने तय किया कि मगध-राज तक पैदल ही यात्रा करके वह अमूल्य हीरा देवी को भेंट करेंगे। दूसरे दिन दोनों पैदल ही चल पड़े।

बहुत दूर चलने के बाद जङ्गल-पहाड़, नदी-नालों को पार करते हुए आख़िर वे दोनों

एक नदी के किनारे पहुँचे। उस नदी को पार करने पर मगध-राज ज्यादा दूर न रह जाता था। दोनों ने बड़े उत्साह से नदी पार की और दूसरे किनारे पर जा खड़े हुए। लेकिन वे काफी थक गए थे; इसलिए सोचा कि थोड़ी देर आराम करके फिर चला जाए।

इतने में उन्हें पता चला कि हीरा कहीं खो गया है। अब तो राजकुमार बहुत घबरा गया। उसने कहा- "कैसा गजब हुआ ? मैं खुद उसे मुठ्ठी में लिए चल रहा था । जाने, कहाँ गिर पड़ा ?"

राजकुमारी भी बहुत व्याकुल हो गई। राजकुमार ने सोचा-"हीरा पानी में ही कहीं गिर गया होगा।" इसलिए उसने बहुत से मछुओं को बुला कर कहा-"जो मेरा हीरा ढूँढ कर ला देगा, उसे मैं मुँह-माँगा ईनाम दूँगा।"

लेकिन सभी मछुओं ने साफ साफ कह दिया कि उनसे यह काम नहीं हो सकता। क्योंकि हो सकता था कि नदी में हीरा कभी का बहुत दूर बह गया हो। इसलिए उसे ढूँढ लाना मुश्किल क्या था, नामुमकिन ही था। लेकिन एक बूढ़े ने आगे बढ़ कर कहा-"महाराज ! अगर आप मेरी एक इच्छा पूरी कर दें, तो मैं आपका हीरा ढूँढ़ कर ला दूँ।"

इस पर राजकुमार ने कहा-"बताओ, क्या चाहते हो ?"

बूढ़े ने कहा- "मेरा एक लड़का है। वह बिलकुल निठल्ला है। सीधा-साधा ऐसा है कि उसे कहीं नौकरी नहीं मिलती। आप उसे एक अच्छी नौकरी देने का वादा करें तो मैं आपका हीरा ढूँढ़ कर ला दूँ ।"

राजकुमार ने वादा किया। तब बूढ़े ने नदी में कूद कर डुबकी मारी। थोड़ी देर में वह एक बहुत बड़ी मछली लिए बाहर निकला। मछली अभी जिन्दा थी। बाहर आते ही उसने अपनी पूँछ से एक ऐसी चोट की

कि बूढ़ा पानी में जा गिरा और डूब गया। पर राजकुमार ने झट अपनी तलवार से उस मछली का पेट काट डाला। उसमें से हीरा बाहर निकला।

तमाशा देखने के लिए वहाँ बहुत से लोग जमा हो गए थे। वे सब यह दृश्य देख कर दाँतों तले उँगली दबाने लगे। हीरा देख कर राजकुमार और चन्द्रमुखी भी बहुत खुश हुए। इतने में कहीं से एक गीदड़ आ गया और हीरे को मुँह में लेकर भागा। राजकुमार लपक कर उसका पीछा करने लगा। वह गीदड़ तीन कोस तक दौड़ता गया। फिर उस हीरे को एक झाड़ी में छोड़ कर लापता हो गया। बेचारे राजकुमार ने बड़ी मुश्किल से हीरा ढूँढ़ निकाला।

फिर राजकुमार और चन्द्रमुखी दोनों वहाँ से चल कर और थोड़ी दूर गए। लेकिन दोनों, अब तक बहुत थक गए थे; इसलिए एक पेड़ के नीचे बैठ कर सुस्ताने लगे। बेचारे कितने उत्साह से देवी को हीरा भेंट करने चले थे ! लेकिन राह में विघ्न ही विघ्न मिलते गए। आख़िर किसी न किसी तरह उनका हीरा मिला।

राजकुमार हीरे को बड़ी हिफाजत से अपनी पगड़ी के नीचे रख कर

लेटा हुआ था । इतने में न जाने, कहाँ से एक चील उड़ती-उड़ती आई और हीरे को झपट ले गई। राजकुमार चौंक कर उठ बैठा ! उसने देखा कि वह चील कहीं गई नहीं; वहीं उनके सिर के ऊपर आसमान में मँडरा रही है । यह देख कर राजकुमारी बहुत उदास हो गई । वह सोचने लगी – "जिस चीज़ को पञ्छी झपट ले जाए, वह फिर कैसे हाथ आएगी ? वह उसे कहीं ले जाकर गिरा देगा और हम ढूँढ़ते ही रह जाएँगे।"

राजकुमारी को इस तरह सोच करते देख कर राजकुमार ने उसे धीरज बँधाया और कहा - "चलो, हम भी इसके पीछे पीछे

चलें। यह हीरे को कहीं न कहीं गिराएगा तो जरूर !"

यह सोच कर वे दोनों उस चील के पीछे पीछे चलने लगे। चील आसमान में उड़ती जाती थी और थके-माँदे राजकुमार और चन्द्रमुखी उसके पीछे पीछे दौड़े जाते थे। यों बहुत दूर जाने के बाद वह चील बड़े वेग से पूरब की ओर उड़ी और नजरों से गायब हो गई। भूखे-प्यासे बेचारे दोनों उसी ओर दौड़ते गए।

लेकिन जब अँधेरा हो गया तो वे दोनों हार मान कर एक जगह बैठ गए। थोड़ी देर में उन्हें बहुत दूर पर बड़ी तेज चमक दिखाई पड़ी। उन्हें नहीं मालूम था कि वह रोशनी किस जगह से आ रही है। लेकिन उन्हें ऐसा लगा कि वह रोशनी उन्होंने पहले कहीं देखी है। उनके मन में सन्देह हुआ और वे दोनों उठ कर उसी ओर चल पड़े।

इस तरह चलते चलते बहुत दूर जाने के बाद उन्हें एक मन्दिर दिखाई दिया। वह रोशनी उसी मन्दिर में से आ रही थी। उन्होंने मन्दिर में जाकर देखा तो उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। वह चन्द्रमुखी की देवी का मन्दिर था। उसी देवी के सिर पर उनका खोया हुआ हीरा चमक रहा था। यह रोशनी उसी की थी। अँधेरे में भटकते भटकते वे मगध-देश में आ पहुँचे थे। लेकिन यह हीरा यहाँ कैसे पहुँच गया ? बहुत दिमाग लड़ाने पर भी चन्द्रमुखी और राज-कुमार को इसका रहस्य नहीं मालूम हुआ । आखिर हार मान कर उन्होंने विश्वास कर लिया कि यह सब देवी की महिमा थी । राजकुमार अपनी पत्नी के साथ कुछ दिन तक सानन्द ससुराल में रहा। फिर अपने घर लौटने के बाद उसने वादे के मुताबिक उस बूढ़े मछुए के लड़के को बुलाया और उसे अपना सेनापति बना लिया।
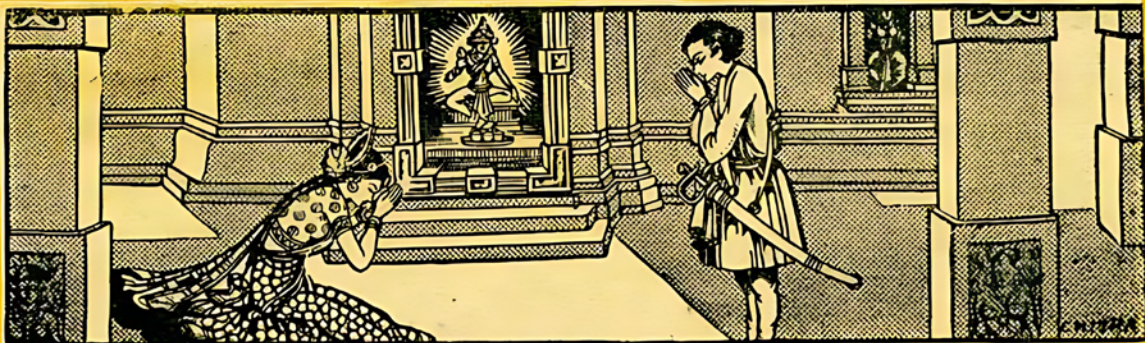
सागर महाराज की लड़की का नाम स्वर्णलता था। वह बड़ी सुन्दरी थी। उसकी सुन्दरता की प्रशंसा सुन कर देवताओं के गुरु बृहस्पति उस पर मुग्ध हो गए। लेकिन वे उससे खुले खजाने कुछ कह तो नहीं सकते थे ? क्योंकि अगर यह बात उनकी पत्नी तारा को मालूम हो जाती तो फिर उनकी खैर न थी। इसलिए उन्होंने स्वर्णलता को एक बछड़ा बना लिया और चुपके से उसे स्वर्ग में लाकर पालने लगे।

एक दिन उनकी स्त्री तारा ने उस बछड़े को जो देखा तो वह उस पर मुग्ध हो गई। उसने पति से उसे अपने लिए माँगा। बृहस्पति इनकार कैसे कर सकते थे ? लाचार होकर उन्होंने उसे पालने के लिए दे दिया। तारा ने बड़े प्यार से उसे चराने का काम अपने सेवक शतलोचन को सौंपा।

एक दिन शतलोचन उस बछड़े को पृथ्वी पर चराने ले गया। उसी समय सागर महाराज अपनी बिटिया को खोजते हुए उधर से आ निकले। उन्होंने बछड़े को देखा। लेकिन उन्हें क्या मालूम था कि वही उनकी बिटिया है ? तो भी बछड़े के रूप में स्वर्णलता ने पिता को पहचान लिया। उसने उन को अपनी राम-कहानी सुनानी चाही। लेकिन पशु-रूप में रहने के कारण सिर्फ करुण-स्वर में रम्भा कर रह गई।

तब उसने अपने खुर से जमीन पर "स्वर्णा" नाम के अक्षर लिख दिए। जब यह सागर ने देखा तो उन्हें सारा हाल मालूम हो गया और वे आँसू बहाने लगे। लेकिन क्या कर सकते थे ?

सागर को देख कर शतलोचन ने सोचा- "हो न हो, यह जरूर कोई चोर है जो बछड़े को चुराने आया है।" शतलोचन के

"शत लोचन" याने सौ आँखें थीं। वह अब चौकन्ना होकर अपनी सौ आँखों से बछड़े की रखवाली करने लगा।

लाचार होकर सागर ने बृहस्पति के पास जाकर चिरौरी की कि किसी न किसी उपाय

से स्वर्णलता को मुझे लौटा दो। बृहस्पति ने तरस खाकर उनकी बेटी को लौटा देने का वादा किया। फिर वे एक ग्वाले का बेष घर कर उस मैदान में गए जहाँ शतलोचन बछड़े को चरा रहा था। उन्होंने धीरे धीरे शतलोचन को बातों में लगाया। लेकिन वह बछड़े की बात नहीं भूला। तब उन्होंने गाना शुरू किया जिससे उसे नींद आए। लेकिन शतलोचन अपनी आँखें और भी फाड़ फाड़ कर देखने लगा। तब बृहस्पति ने परियों, राक्षसों और देवताओं की कहानियाँ सुनाना शुरू किया। लेकिन उसे झपकी न आई।

तब बृहस्पति ने ऊब कर एक बहुत लम्बी कहानी सुनाना शुरू किया। वह कहानी ऐसी नीरस थी कि शतलोचन को जल्दी ही जम्हाइयाँ आने लगीं और उसकी आँखें एक एक करके मुँदने लगीं। फिर भी दो आँखें खुलीं ही रह कर उस बछड़े पर पहरा देतीं रहीं।

तब बृहस्पति ने एक दवाई लाकर उनमें डाल दी। दवाई लगते ही वे दोनों आँखें भी मुँद गईं।

बृहस्पति ने सोचा-"यही मौका है।"

उन्होंने बछड़े को फिर स्वर्णलता बना दिया और उसके पिता के पास ले जाकर सौंप दिया।

शतलोचन की आँखें खुलीं तो बछड़े का कहीं पता न था। उसने जब भीगी बिल्ली की तरह तारा के पास जाकर यह खबर सुनाई तो वह आगबबूला हो गई। उसने उसे शाप दिया और उसकी सौ चमकती हुई आँखें निकाल कर मोर के पंख में लगा दी। इसी से देखो न, मोर पंख ठीक आँख सा होता है !

घोंघे का जन्म

किसी गाँव में एक आलसी रहता था। वह ऐसा सुस्त था कि जिस जगह बैठ जाता वहाँ से टलने का नाम न लेता। लेकिन खाने-पीने में किसी से कम न था; बल्कि यों कहना चाहिए कि सभी से बढ़ा-चढ़ा था।

उस गाँव के रहने वाले सब लोग दिन रात मेहनत करते, फिर भी पेट भरने में मुश्किल होती थी। फिर वे कितने दिन तक इस आलसी को आराम से बिठा कर खिलाते रहते ? इसलिए उन्होंने उसे मार-पीट कर गाँव से निकाल दिया।

उस गाँव की बगल में ही एक और गाँव था। वहाँ के रहने वाले सब परले दर्जे के अहदी थे। वे कभी मेहनत न करते थे। वे दूसरे गाँव वालों की फसल चुरा कर या घरों में सेँध मार कर अपना पेट भरते थे। लेकिन उनके गाँव में एक ऐसा आदमी था जो दिन रात मेहनत करके मुश्किल से अपना पेट भरता था। उस मेहनती को देख कर गाँव वाले चिढ़ गए। उन्होंने उसे मार-पीट कर बाहर निकाल दिया।

इधर आलसी को कोई ऐसा गाँव चाहिए था, जहाँ बिना काम किए पेट भर खाना मिले। इसलिए वह पैर घसीटते घसीटते थोड़ी दूर तक चला। लेकिन आलसी होने के कारण थोड़ी ही देर में एक पेड़ की छाँह में लेट कर खुर्राटे भरने लगा। उधर मेहनती भी किसी ऐसे गाँव की खोज में था जहाँ मेहनत की कद्र हो और पेट भर खाना मिले। वह भी चलते चलते उसी पेड़ के पास पहुँचा जहाँ आलसी बाबू नींद में लड्डू और जिलेबी का सपना देख रहे थे।

तब तक पौ फट चुकी थी। सूरज निकलने पर था। मेहनती ने आलसी को जगाया। दोनों ने एक दूसरे को अपनी अपनी कहानी कह सुनाई। इतने में उन्हें पश्चिम की ओर एक आलीशान महल

चमचम करता दिखाई दिया। वह सङ्गमरमर का बना हुआ था। उसकी मीनारों पर सोने का पानी चढ़ा था। दोनों एकटक उसे देखने लगे। वह देवताओं का निवास सा मालूम पड़ा। उषा की सुनहली, कोमल किरणों में वह महल कुन्दन सा दमक रहा था।

उसी समय करोड़ों चन्द्रमाओं की कान्ति वाली एक देवी इन दोनों मुसाफिरों के सामने आ खड़ी हुई। उस देवी का तेज देख कर आँखें चौन्धिया जाती थी। उसका सारा बदन सोने के जवाहिर जड़े गहनों और अमूल्य मणि-मालाओं से लदा हुआ था। दोनों बटोही अचरज से आँखें फाड़ फाड़ कर उसकी तरफ देखने लगे।

उस देवी ने कहा-"ऐ बटोहियो ! मेरा नाम लक्ष्मी है। दूर पर वह जो महल दिखाई देता है, वही मेरा घर है। तुम दोनों अगर सूरज ढलने के पहले मेरे घर आ जाओ तो मैं तुम्हें अपना मेहमान बना लूँगी और मालामाल कर दूँगी।' यह कह कर देवी अदृश्य हो गई।

मेहनती के मन में बहुत उत्साह हुआ। इतने दिन तक रात दिन ऐड़ी-चोटी का पसीना एक करने पर भी उसका पेट न भरता था। आज एक दिन मेहनत करने से उसे जिन्दगी भर किसी चीज़ की कमी न रहेगी।

उसने आलसी से कहा-"'भैया ! सुना तुमने ? अगर हम साँझ होने के पहले किसी न किसी तरह उस महल में पहुँच गए, तो समझ लो कि हमारी तकदीर खुल गई। उठो, जल्दी चल दें यहाँ से !"

"बाप रे बाप! क्या तुम समझते हो कि वह महल बहुत नजदीक है ? उस चुड़ैल के धोखे में न आओ ! नहीं तो दौड़ते-दौड़ते नाहक अपनी जान गँवा दोगे। भाई ! बेकार की आफ़त अपने सिर क्यों लेते हो ? बड़ों का कहना है कि सोच-विचार कर हर एक काम करना चाहिए। जल्दबाजी कभी नहीं करनी चाहिए।" आलसी बाबू ने जम्हाई लेते हुए कहा। तब मेहनती ने सोचा कि इससे बहस करने में कोई फायदा नहीं। इसलिए वह अकेला ही उस महल की ओर चल पड़ा।

आलसी ने मेहनती को देख कर तरस खाते हुए सोचा- "बेचारा इतनी दूर कैसे चलेगा ? ऐसे मौके पर अगर परियों की कहानियों वाला जादू का घोड़ा मिल जाए तो कितना अच्छा हो ? पलक झपकते उस महल में पहुँच कर देवी को चकित कर दें।"

यों सोचते सोचते आलसी की झपकी लग गई। ग्यारह बज गए; तब कहीं उसकी नींद टूटी। इतने में उसे एक दुबला-पतला अधमरा सा गधा दिखाई दिया। बस, उसने सोचा- "अच्छी सवारी मिली।" उसने उस गधे पर चढ़ कर दौड़ाना शुरू किया। गधा हाँफते हाँफते बेदम हो गया। दोपहर होते होते आलसी मेहनती से जा मिला। उसने उसे देख

कर मजाक उड़ाया और गधे को मार-पीट कर दौड़ाना शुरू किया। थोड़ी देर में वह एकदम आगे बढ़ गया। लेकिन गधे के बदन की सारी ताकत खतम हो चुकी थी। वह मुँह से फेन उगलते हुए नीचे गिर पड़ा और ठण्डा हो गया। आलसी वहीं एक पेड़ की छाँह में आराम करने लगा।

थोड़ी देर में उसे एक कछुआ दिखाई दिया। उसने सोचा -"यह और भी अच्छी सवारी है। आराम से पहुँच जाऊँगा।" वह कछुए पर चढ़ कर चल पड़ा।

साँझ होते होते मेहनती आलसी से आ मिला। उसने कहा- "भैया, साँझ हो चली है। इस कछुए को छोड़ कर मेरे साथ दौड़ चलो। नहीं तो फिर अँधेरा हो जाएगा।"

"अरे भाई ! देखते नहीं ? सामने ही तो है वह महल ! अगर उठते-बैठते भी जाएँ तो समय पर वहाँ पहुँच जाएँगे। पहले पहुँच कर क्या करोगे वहाँ ?" आलसी ने जवाब दिया।

मेहनती कुछ नहीं बोला। वह चुपचाप दौड़ने लगा। साँझ होते होते वह महल के फाटक पर पहुँच गया। लक्ष्मी जो वहाँ खड़ी थी खुद अगवानी करके उसे महल के अन्दर ले गई।

आलसी कछुए पर चढ़ कर धीरे-धीरे चलता हुआ महल के पास पहुँचा। तब तक अँधेरा हो चुका था। फाटक बन्द हो गए थे। वह बड़ी देर तक दरवाजा खटखटाता रहा। लेकिन वह दरवाजा ऐसा न था जो बार बार खुलता।

"धत तेरी की ! बेकार मैंने इतना पसीना बहाया ! खैर, जो हो गया सो हो गया। आज रात भर यहीं आराम करूँगा।' यह सोच कर आलसी महल की देहली पर माथा टेक कर सो गया।

जब सबेरा हुआ तो आलसी की जगह देहली पर एक घोंघा पड़ा हुआ था । अब बेचारे आलसी को इधर-उधर घूमने फिरने की जरूरत न रह गई थी ।

किसी गाँव में बालू नाम का एक दर्जी रहता था। वह बड़ा गरीब था। जब उसके लिए उस गाँव में पेट पालना भी मुश्किल हो गया तब वह बाल-बच्चों को लेकर मद्रास आ गया। शहर में उसे काम खूब मिलने लगा। अब उस के दिन सुख से कटने लगे।

एक साल होते होते बालू ने अपनी कमाई में से कुछ रुपया जमा भी कर लिया। इतने में दसहरे का त्योहार आया तो उसकी पत्नी ने कहा- "अजी ! हमें देश छोड़े एक साल हो गया। चलो न, एक बार अपने गाँव जाकर सब लोगों को देख आएँ ?" दर्जी के मन में भी गाँव जाने की इच्छा थी। इसलिए उसने तुरन्त सहमत होकर अपनी पत्नी से कहा-"अच्छा, चलो, इसमें क्या हर्ज़ है ?"

उसने यह कह तो दिया; लेकिन उसको मालूम था कि इसमें एक भारी दिक्कत है। दसहरे के लिए बहुत लोगों ने उसे नए कपड़े सीने को दिए थे। परब-त्योहार का मामला था। उन्हें कपड़े दसहरे के पहले ही सीकर देने थे। अगर उन्हें यह बात मालूम हो जाती कि बालू उनके कपड़े सीकर दिए बिना ही खुद चुपके से त्योहार मनाने गाँव जा रहा है तो फिर खैर नहीं। इसलिए उसने सोचा कि सवेरे छः बजे की गाड़ी से बिना किसी से कुछ कहे चल देना चाहिए। साधारणतया स्टेशनों में गाड़ी आने के एक घण्टा पहले टिकट देना शुरू करते हैं। लेकिन मद्रास में सबेरे से शाम तक टिकट बेचते रहते हैं । इसलिए मुसाफिर पहले ही से टिकट खरीद रख सकते हैं।

मोहनचन्द
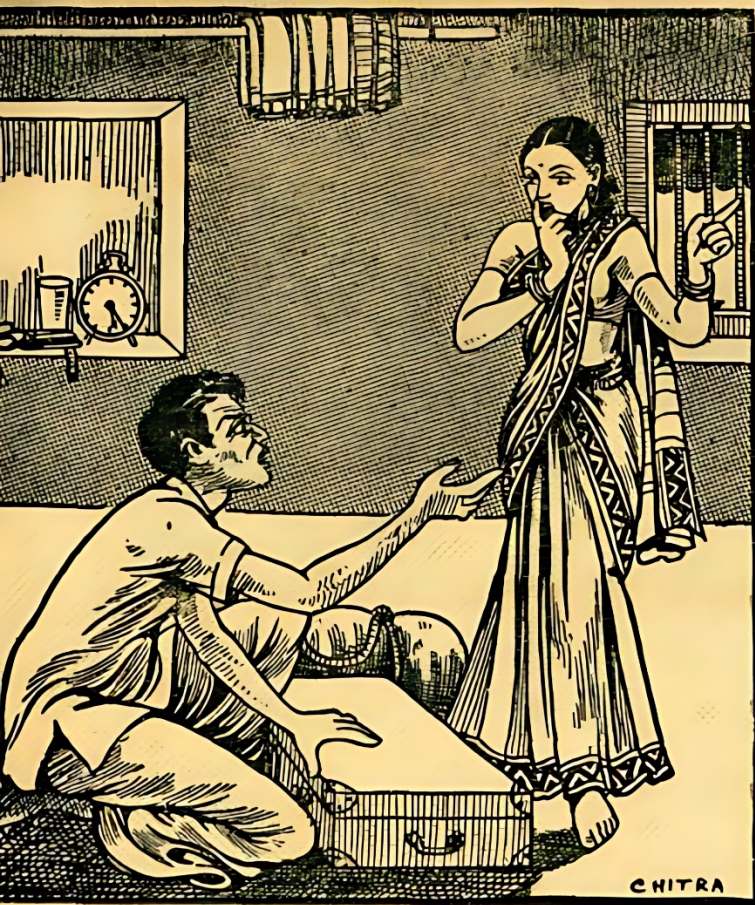
बालू ने उसी दिन जाकर दो टिकट खरीद लिए और हिफाजत से जेब में रखकर खुशी खुशी घर लौटा।

दोपहर तक पति-पत्नी ने बड़ी मेहनत करके पेटी में कपड़े-लत्ते सहेज लिए। सब कुछ ठीक हो गया। रात में सोने के लिए सिर्फ बिस्तरा अलग रख लिया जिसे सबेरे आसानी से बाँध लिया जा सके। रसोई भी जल्दी बन गई। सफर के लिये सारी तैयारियाँ हो गईं।

"ठीक पाँच बजे उठना होगा। अगर पहले तुम्हीं जग गईं तो मुझे उठा देना। अगर मेरी नींद पहले टूटी तो मैं तुझे जगा दूँगा।" बालू ने अपनी पत्नी से कहा और चादर तान कर लेट गया।

वह लेटा तो सही, लेकिन सफर की फिक्र में उसे नींद न आई। इसलिए खूब तड़के ही उठ कर उसने पत्नी को भी जगा दिया। दोनों ने झट-पट नहा-धोकर कपड़े पहन लिए और कलेवा भी कर लिया। वे तैयार होकर घर से निकलना ही चाहते थे कि बालू की स्त्री ने पूछा- "टिकट हिफाजत से रख लिए हैं न ?"

यह सुनते ही बालू ने घबरा कर अपनी जेब टटोली, लेकिन टिकट नहीं दिखाई पड़े। उसकी घबराहट और भी बढ़ गई। सारा घर छान डाला। आखिर बहुत सोचने पर याद आया कि टिकट उसने धारीदार कोट की जेब में रखे हैं ।

वह कोट सन्दूक में था। तब तक साढ़े पाँच बज गए। बालू ने मन ही मन झुँझलाते हुए अपनी स्त्री से चाभी माँगी। उसने चाभी और कहीं रख दी थी। घबरा कर उसने भी

सारा घर छान डाला। लेकिन चाभी कहीं न दिखाई दी।

आखिर थोड़ी देर तक सोचने के बाद उसे याद आया कि चाभी तो उसने आँचल के छोर में बाँध ली थी। उसने यही बालू से कह दिया।

बालू ने चिल्ला कर पूछा-"अच्छा तो वह साड़ी कहाँ है ?"

"साड़ी तो धोबी के घर में है। लेकिन मुझे अब याद आ रहा है कि चाभी मैंने थैली में धर दी थी।"

"थैली कहाँ है ?" बालू ने झुँझला कर पूछा।

"बच्चा रो रहा था। उसे चुप करने के लिए मैंने थैली उसे दे दी थी !" उसकी पत्नी ने जवाब दिया।

तब उन दोनों ने लपके हुए अन्दर जाकर देखा तो बस, और क्या था ? सन्दूक की चाभी बच्चे के गले में अटकी हुई थी और उसका दम घुट रहा था। यह देख कर दोनों ने रोना-पीटना शुरू कर दिया। लेकिन बालू ने किसी तरह बच्चे से चाभी उगलवायी !

अब छः बजने में सिर्फ दस मिनट बाकी थे। उसने तुरन्त चाभी लेकर पेटी खोली। कोट की जेब में से टिकट निकाल कर पेटी फिर बन्द कर दी। "चलो, चलो ! जल्दी चलो ! स्टेशन ज्यादा दूर नहीं है। शायद अब भी गाड़ी मिल जाए !" यह कह कर बालू ने पेटी । और बिस्तरा उठाया। उसके पीछे पीछे बच्चे को गोद में लेकर उसकी औरत चली। लेकिन अभी दस कदम भी नहीं गए थे कि बालू को याद आया - "बटुआ तो घर

में ही भूल आया है। किसी तरह फिर पीछे लौटा और बटुआ लेकर चला। तब छः बजने में सिर्फ पाँच मिनट बाकी थे।

वे थोड़ी दूर तक आगे बढ़े थे कि बालू की स्त्री को फिर एक सन्देह हुआ। उसने कहा-"अजी ! घर में ताला तो अच्छी तरह लगा दिया है न ? जमाना अच्छा नहीं।"

"इन औरतों से तो भगवान ही बचाएँ !" यह कहते हुए बालू घर की ओर दौड़ा और ताला देख-भाल कर लौटा। अपनी पत्नी के पास आकर उसने कहा- "बार बार कोई न कोई चीज़ भूल जाते हैं हम लोग ! इसलिए एक बार अच्छी तरह देख लेना चाहिए कि कोई चीज़ छूट तो नहीं गई है ?" यह कह कर बालू ने फिर एक बार सब चीज़ों पर नज़र दौड़ाई।

"यह मेरा कोट है। कोट में दोनों टिकट हैं। बटुआ भी है। सन्दूक है। बिस्तरा है। यह चाभी है। भगवान भला करे – यह मेरा लड़का है! यह मेरी पत्नी है और यह मैं हूँ !" वह गिनने लगा।

उसका गिनना अभी पूरा भी नहीं हुआ था कि घड़ी में टन टन करके छः बज गए और रेल की सीटी भी सुनाई दी।

बाल के मुँह पर स्याही फैल गई। स्टेशन से आने वाले मुसाफिरों ने बताया कि गाड़ी चली गई। अब वे बेचारे क्या करते ? मुँह लटकाए घर लौटे।

उनका यह हाल जब लोगों को मालूम हुआ तो वे बालू की हँसी उड़ाने लगे- "क्यों बालू ! तुम हमारे त्योहार के कपड़े दिए बिना ही भाग जाना चाहते थे ? भगवान ने तुम्हें अच्छा सबक पढ़ाया !"

बालू ऐसा शर्माया कि जवान तक न हिला सका। बेचारा चुपचाप अपने काम में लग गया और फिर गाँव जाने का नाम तक न लिया।

राजपुताने में एक छोटा सा गाँव था। उस गाँव में एक बुढ़िया रहती थी। उस बुढ़िया की एक ही बेटी थी और एक नाती था। उसका नाम रामसिंह था। रामसिंह के बाप और नाना दोनों बड़े वीर थे। उन दोनों ने लड़ाइयों में अपने राजा की तरफ से लड़ते हुए वीर-स्वर्ग पाया था। उस समय रामसिंह छः महीने का दुधमुँहा बच्चा था। माँ-बेटी ने उसको प्रेम से पाल कर बड़ा किया और इस तरह अपने बेवापन का दुख भूल गईं।

जब रामसिंह डेढ़ साल का था तो वह एक बार बिजली गिरने की आवाज सुन कर डर गया। तब से वह बड़ा डरपोक और दब्बू बन गया। बड़े होने के बाद भी यही हाल रहा। उसके साथी सभी उसकी कमजोरी जान कर उसे चिढ़ाने और मजाक उड़ाने लगे।

रामसिंह की कायरता देख कर उसकी माँ और नानी को भी बड़ी चिन्ता हुई। वे दोनों सोचने लगीं कि इसका डरपोकपन कैसे छुड़ाया जाए ? आखिर बहुत सोचने के बाद नानी को एक उपाय सूझ गया ।

एक दिन रामसिंह अपने हमजोलियों के साथ खेलने गया और रोज़ की तरह वहाँ उनसे मार खाकर रोते-पीटते घर आया।

तब उसकी नानी ने कहा- "दब्बू कहीं का! अगर किसी ने तुझको एक तमाचा लगा दिया तो तुझे उसे दो तमाचे लगा देने चाहिए । यह नहीं कि बुद्धू बन कर रोते हुए घर आओ ! क्या तुम जानते हो कि तुम्हारे बाप-दादे कितने बहादुर थे? वे यमराज से भी नहीं डरते थे। वे लड़ाई में दुश्मनों को मूली- गाजर की तरह काट डालते थे । तुम्हें भी बड़े होने के बाद लड़ाई में जाना होगा।"

"बाप रे बाप ! क्या मुझे भी लड़ने के लिए

रणवीर सिंह

जाना होगा ? मुझे तो लड़ाई का नाम सुनते ही डर लगता है।" रामसिंह ने कहा।

तब उसकी नानी ने जवाब दिया- "बेटा! डरने की कोई बात नहीं है। हमारे घर में एक ताबीज है जो एक बड़े महात्मा ने तुम्हारे नानाजी को दी थी। उसी ताबीज के प्रभाव से तुम्हारे बाप-दादा निडर होकर लड़ने जाते थे और विजय पाते थे। उस ताबीज को

बाँध लेते ही बड़े से बड़ा डरपोक भी बहादुर बन जाता है। आ, मैं वह ताबीज तेरी बाँह में बाँध दूँगी। जब तक वह ताबीज तेरे पास रहेगी कोई तेरा बाल भी बाँका न कर सकेगा। तू भी बड़ा शूरवीर बनेगा और तुझे देखते ही दुश्मन डर से काँपने लगेंगे।"

यह कह कर बुढ़िया अपने सन्दूक के तले से एक ताम्बे की ताबीज ले आई और उसे अपने नाती की बाँह में बाँध दिया। अब रामसिंह को विश्वास हो गया कि इस ताबीज के रहते उसे कोई नहीं जीत सकता। वह तुरन्त दौड़ कर घर से बाहर खेलने गया। मैदान में लड़के सभी लट्टू घुमा रहे थे। उसने सीधे उनके पास जाकर ललकारा- "आओ, देखें, कौन मुझसे लड़ने आता है ? आज एक एक को मजा चखा दूँगा।" उसको इस तरह बोलते देख कर लड़के सभी अचरज में डूब गए। यह तो बिलकुल नई बात थी!

आखिर उन लड़कों के अगुए ने होश सम्हाल कर कहा - "आओ सभी, मुँह बाए खड़े क्या देखते हो ? पकड़ कर पीट दो न इस बेशरम को !" यह सुनते ही सब लड़कों ने रामसिंह को चारों ओर से घेर लिया। लेकिन रामसिंह बिलकुल न डरा। उसने एक एक को खूब लथेड़ मारा। आज मानों वह बौखला गया था। उसकी लातें और मुक्के खाकर लड़कों के होश ठिकाने आ गए। उनमें से कोई न जान सका कि आज

रामसिंह में यह ताकत और हिम्मत कहाँ से आ गई। वे पीठ सहलाते हुए सिर पर पैर रख कर वहाँ से भाग निकले। रामसिंह ने खुशी खुशी घर जाकर नानी से सारा हाल कह सुनाया। उसने कहा-"है तो ताबीज करामात वाली !" उसकी नानी भी अपना उपाय फलते देख बहुत खुश हुई।

रामसिंह ने बड़े होने के बाद सब अस्त्र- शस्त्र चलाना सीख लिया। फिर उसने जयपुर के राजा के दरबार में जाकर नौकरी कर ली। कुछ ही दिनों में उसका नाम चारों ओर फैल गया। लोग कहने लगे कि यह बाप-दादे से भी बड़ा बहादुर निकला। राजा ने भी उसकी बहादुरी से खुश होकर उसे एक छोटी सी सेना का सेनापति बना दिया।

कुछ दिनों बाद एक बार जयपुर के राजा को किसी राज पर चढ़ाई करनी पड़ी। तब उसने रामसिंह को मुठ्ठी भर सैनिकों के साथ दुर्ग की रक्षा करने को कहा और वह स्वयं सारी सेना लेकर लड़ाई पर गया। यह खबर एक जागीरदार को मालूम हुई। वह जयपुर के राजा का पुराना दुश्मन था। उसने सोचा-अच्छा मौका है। तुरन्त अपनी सारी सेना लेकर जयपुर पर चढ़ आया। दुर्ग में जो सेना थी वह जागीरदार की सेना से संख्या में बहुत कम थी। दुर्ग के सब लोग हिम्मत हार बैठे। पहले रामसिंह को भी बहुत डर लगा। लेकिन ताबीज की याद आते ही उसे धीरज हुआ।

उसने किले के पिछवाड़े के दरवाजे से अपने दूतों द्वारा राजा को खबर भेजी। फिर वह किले के सब दरवाजे बन्द कर राजा की सहायता के लिए राह देखने लगा । दुश्मनों ने इस बीच घेरा डाल कर किले पर दो तीन बार हमला किया। लेकिन रामसिंह ने अपनी वीरता से उन्हें मार भगाया।

लेकिन दिन दिन किले में रसद चुकती जा रही थी। रामसिंह चिन्ता में पड़

गया। यहाँ तक कि लोग आखिर भूखों मरने लगे। तब निराश होकर रामसिंह और उसके साथियों ने केसरिया बाना पहना और किले के फाटक खुलवा कर दुश्मनों पर शेरों की तरह टूट पड़े।

उन्होंने सोचा कि किले में चूहों की तरह भूखों मरने की अपेक्षा लड़ते लड़ते मर जाना ही बेहतर है। घमासान लड़ाई होने लगी। रामसिंह जान पर खेल कर लड़ने लगा। उसे देख कर डरपोक से डरपोक सैनिक में भी हिम्मत आ गई। दुश्मन लोग संख्या में ज्यादा थे। लेकिन वे भी रामसिंह की वीरता से हैरान हो रहे थे। इस तरह बड़ी देर तक लड़ाई होती रही। लेकिन मुठ्ठी भर सिपाही कहाँ तक लड़ते ! रामसिंह के साथी सभी कट मरे। दुश्मनों की जीत होने लगी। इतने में जयपुर के राजा ने, जो रामसिंह के भेजे हुए दूतों से खबर पाकर सेना के साथ लौट आया था, पीछे से दुश्मनों पर चढ़ाई कर दी। दोनों ओर से घिरते ही जागीरदार की हिम्मत टूट गई । उसकी सेना हार कर भाग निकली।

जयपुर के राजा ने रामसिंह की बहादुरी से खुश होकर उसे एक बड़ी जागीर और बहुत से ईनाम दिए । रामसिंह ने वे ईनाम घर ले जाकर नानी को दिखाए और कहा - "नानी ! यह सब तुम्हारी ताबीज का प्रभाव है।" तब नानी ने कहा- "तो क्या बेटा ! अब तक तुम उस ताबीज को सच्ची समझ रहे थे ?"

"तो क्या वह सच्ची नहीं है ?" रामसिंह ने चकित होकर पूछा।

"वह तो बेटा तुम्हारी कायरता दूर करने के लिए मैंने झूठमूठ बाँध दी थी।" नानी ने कहा।

"कुछ भी हो; उसके जरिए मैंने बाप-दादों नाम रख लिया।" रामसिंह ने हँसते हुए जवाब दिया।

हिमालय की तराइयों में एक बहुत बड़ी घाटी है। उसके चारों ओर ऊँचे-ऊँचे पहाड़ हैं। उन पहाड़ों पर जब पानी बरसता है तो चोटियों पर से बहुत से झरने बहने लगते हैं। लेकिन एक भी घाटी में नहीं गिरता। तो भी पानी खूब बरसने के कारण उस घाटी में गेहूँ आदि अनाज और अंगूर आदि फल खूब पैदा होते हैं। इसलिए उस घाटी का नाम सोने की घाटी पड़ गया। उस घाटी के पश्चिम की ओर एक बहुत ऊँचा पहाड़ है। उसकी चोटी पर से एक नदी पहाड़ की दूसरी तरफ बहती है। साँझ की सुनहरी धूप में उस नदी का जल सोने की तरह चमकता रहता है। इसलिए लोग उस नदी को काञ्चनगङ्गा (यानी सोने की गङ्गा) कहते हैं।

उस सोने की घाटी में किसी समय तीन भाई रहते थे। बड़े का नाम सुन्द, मँझले का उपसुन्द और सबसे छोटे का नन्द था । नन्द की उम्र अभी बहुत कम थी। उसके दोनों बड़े भाई बड़े जालिम थे। वे अपने सुख-स्वार्थ के सिवा और कोई बात नहीं सोचते थे।

वे अपने खेतों में काम करने वाले किसानों और मजदूरों को खूब सताते और निर्दय होकर उनका खून चूसते थे। इस से सब लोग उन्हें राक्षस-युगल कहते थे। ये दोनों अपने छोटे भाई नन्द को भी बहुत सताते थे ।

नन्द बहुत भोला-भाला था। उसका स्वभाव अपने भाइयों के स्वभाव से ठीक उल्टा था। वह उनकी खूब सेवा टहल करता। उसका हृदय बहुत ही कोमल था। वह

जनार्दन पाण्डे

अक्सर भिखारियों और भूखे-प्यासे गरीबों को खाना दिया करता था। लेकिन जब यह बात उसके भाइयों को मालूम हो जाती, तो वे उसे खूब पीटते और दिन भर भूखा रखते थे। क्योंकि वे बहुत कञ्जूस थे । नन्द जब अकेला रहता तो अपने भाइयों के डर से किवाड़, खिड़कियाँ सब बन्द करके घर में बैठा रहता। अपने भाइयों के अलावा और किसी के लिए दरवाजा नहीं खोलता।

एक दिन जोर से तूफान चल रहा था। सुन्द और उपसुन्द कहीं बाहर गए हुए थे। नन्द अकेला रसोई-घर में बैठा भाइयों के लिए रोटियाँ पका रहा था। इतने में बाहर जोर से किवाड़ खटखटाने की आवाज हुई। उसके भाई भी कभी इतने जोर से नहीं खटखटाते थे । नन्द ने डरते हुए दरवाजे के पास जाकर पूछा-" कौन है ?"

"दरवाजा खोलो!" किसी ने भर्राए हुए गले से चिल्ला कर कहा।

नन्द ने दरवाजा खोल दिया। तुरन्त ऐसा मालूम पड़ा मानो सारा तूफान उसी के घर में घुस गया हो। एक लम्बे-तगड़े, मोटे-ताजे आदमी ने अन्दर कदम रखा। उसके बदन पर के कपड़े हवा से उड़ कर छत को छूने लगे। वह आदमी जल भरे बादलों की तरह काला-कलूटा था ।

"यह सोन्धी गन्ध कैसी ? क्या रोटियाँ पका रहे हो ? मुझे भी एक रोटी दो न ?" यह कहते हुए वह आदमी आगे बढ़ा। वह जिस जगह पैर रखता वहीं पानी भर जाता ।

"साहब! मैं नहीं जानता कि आप कौन हैं ? लेकिन अगर मेरे भाइयों ने आप को यहाँ देख लिया तो वे मुझे मार डालेंगे। उनके आने का समय भी हो गया है। इसलिए कृपया आप जल्दी से चले जाइए!" नन्द ने गिड़गिड़ा कर कहा।

तब उस भले मानुस ने ठठा कर हँसते हुए जवाब दिया- "बच्चे ! मेरे बिना तो तुम्हारे भाइयों का भी काम नहीं चल

'.... मुझे भी एक रोटी दो न?' यह कहते हुए वह आदमी आगे बढ़ा।

सकता। ला, एक रोटी तो दे! खाकर चला जाऊँगा।"

"लेकिन अगर मैं आपको रोटी दूँगा तो मेरे भाई समझेंगे कि मैंने ही चुराई है। वे मुझे मार ही डालेंगे। रोटियाँ भी गिन कर तीन ही बनाई हैं।" नन्द ने कहा।

"बच्चे ! मैं तुम लोगों की कितनी भलाई करता हूँ ! मुझे एक रोटी दोगे तो क्या बिगड़ जाएगा ? क्या भूखे आदमी को निराश करना ठीक है ?" उस आदमी ने पूछा।

वे वरुण देवता थे। इसलिए उन्होंने अपनी बात कुछ भी बढ़ा-चढ़ा कर नहीं कही थी। क्योंकि वरुण की कृपा से ही तो पानी बरसता था और उस घाटी में तरह तरह की फसलें उपजती थीं। उन्हीं के कारण तो दोनों भाई मौज उड़ा रहे थे। लेकिन यह बात नन्द को कैसे मालूम होती ? तो भी उसे उस आदमी को देख कर दया आ गई। उसने सोचा- "पानी में भीग कर ठिठुरते हुए इस बेचारे को एक रोटी देने से मेरा क्या बिगड़ जाता है ?" इसलिए उसने कहा -"साहब ! मेरे हिस्से की रोटी आप ले लीजिए !" "तब तुम क्या खाओगे ?" वरुण ने पूछा। "मेरी फिक्र न कीजिए। मैं अकसर भूखा रह जाता हूँ।" नन्द ने कहा । वरुण देव ने नन्द की रोटी खाते हुए कहा- "'वाह ! क्या मजेदार रोटी बनाई है ? बच्चे ! अपने भाइयों से कह देना कि वरुण बाबा आकर एक रोटी खा गए हैं। वे तुम्हें कुछ नहीं कहेंगे।" यह कह कर वे चले गए।

थोड़ी देर में सुन्द और उपसुन्द घर लौट आए। आते ही उन्होंने खाना माँगा और देखा कि थाली में दो ही रोटियाँ हैं। उन्होंने पूछा-"तीसरी रोटी कहाँ है?"

"वरुण बाबा आकर खा गए। वे तुम से यही कहने को कह गए।" नन्द ने डरते हुए कहा।

"वरुण को इस घर में कदम रखने का क्या हक था ? तुमने उसे क्यों अन्दर आने दिया ?" सुन्द ने चिल्ला कर कहा।

"वरुण- फरुण कुछ नहीं ! यह सब सिर्फ बहाना है। क्यों रे ! तू अपनी रोटी खाकर अब हमारी रोटियों में भी हिस्सा लेना चाहता है ? जा, आज तू भूखों मर ! यही सबसे अच्छी सजा है !" यह कह कर उपसुन्द ने छोटे भाई को खूब पीटा। नन्द बेचारा सिसकते हुए जाकर चुपके से भूखा ही लेट गया।

बस, उस दिन से उस घाटी में फिर कभी पानी नहीं बरसा। जहाँ नदी-नाले भी न हों और पानी भी न बरसे, वहाँ सूखा नहीं पड़े तो क्या हो ? सोने की घाटी सूख कर तवे की तरह तपने लगी। जगह जगह जमीन में दरारें पड़ गई। फल देने वाले पेड़ और अँगूर के बगीचे सब सूख गए। आखिर आँखों को ठण्डक पहुँचाने वाली हरियाली भी गायब हो गई।

एक साल बीत गया। जहाँ देखो वहीं गेरुई मट्टी और बालू ही बालू ! उस घाटी के चारों ओर के पहाड़ भी पेड़-पत्तों और हरी घास के सूख जाने के कारण नङ्गे दिखाई देने लगे।

हाँ, अब सुन्द और उपसुन्द क्या करते ? किसका खून चूसते ? उनको अब अपनी ही जान के लाले पड़ गए। उनका कमाया हुआ सारा रुपया-पैसा खर्च हो गया। सोने-चाँदी की सब चीजें बिक गई। सिर्फ एक सोने की थाली

बच रही। अब दोनों भाई उसे भी गला कर बेच देने की सोचने लगे।

वह थाली नन्द की थी। वह बहुत गिड़गिड़ाया-"मेरी थाली मत गलाओ !" लेकिन उसके भाइयों ने उसकी एक न सुनी। एक कड़ाही में उसे रख कर अँगीठी पर चढ़ा दिया और बाहर चले गए।

बेचारा नन्द बहुत दुखित हो गया। उसे ऐसा लग रहा था जैसे उसका सब कुछ खो गया हो। उसने खिड़की के पास खड़े होकर साँझ की धूप में दूर पहाड़ियों पर सोने की तरह चमकती हुई काञ्चनगङ्गा की तरफ देख कर मन में कहा "अहा ! वह सारा पानी अगर सोना बन जाए तो क्या ही अच्छा हो !"

"सोना क्यों बन जाए ?" नन्द को ऐसा लगा मानो कोई उसके पीछे से फुसफुसाया हो। उसने चौंक कर चारों ओर देखा। लेकिन उस कड़ाही के सिवा कुछ न दिखाई दिया।

"यहाँ बहुत गर्मी लगती है। मुझे बाहर निकालो!" किसी ने धीमी आवाज में कहा। तब नन्द को मालूम हुआ कि वह आवाज कड़ाही से आ रही है। उसने जाकर देखा।

सोने की थाली गल चुकी थी। लेकिन उस कड़ाही में उसे एक चेहरा दिखाई दिया। उसकी सफेद दाढ़ी और मूँछें थीं। छोटी सी आँखें तारों की तरह चमक रही थीं।

"यहाँ बहुत गर्मी लगती है । मुझे बाहर निकालो!" उस चेहरे ने नन्द से कहा। नन्द ने तुरन्त बिना हिचकिचाए कड़ाही अँगीठी पर से उतार दी। लेकिन सोने के बदले एक बौना बूढ़ा जो नन्द के घुटनों तक भी नहीं पहुँचता था, बाहर आ खड़ा हुआ। उस बूढ़े के केश, कपड़े और सारा शरीर सोने की तरह चमक रहे थे। "ओह !" नन्द ने कहा।

"छोकरे ! मुझे जानता है? मैं ही काञ्चनगङ्गा का राजा हूँ।" उस बौने ने कहा ।

नन्द मुँह बाए, हक्का-बक्का सा देखता रहा। बौने ने फिर कहा– "नन्द! मैं तुझे
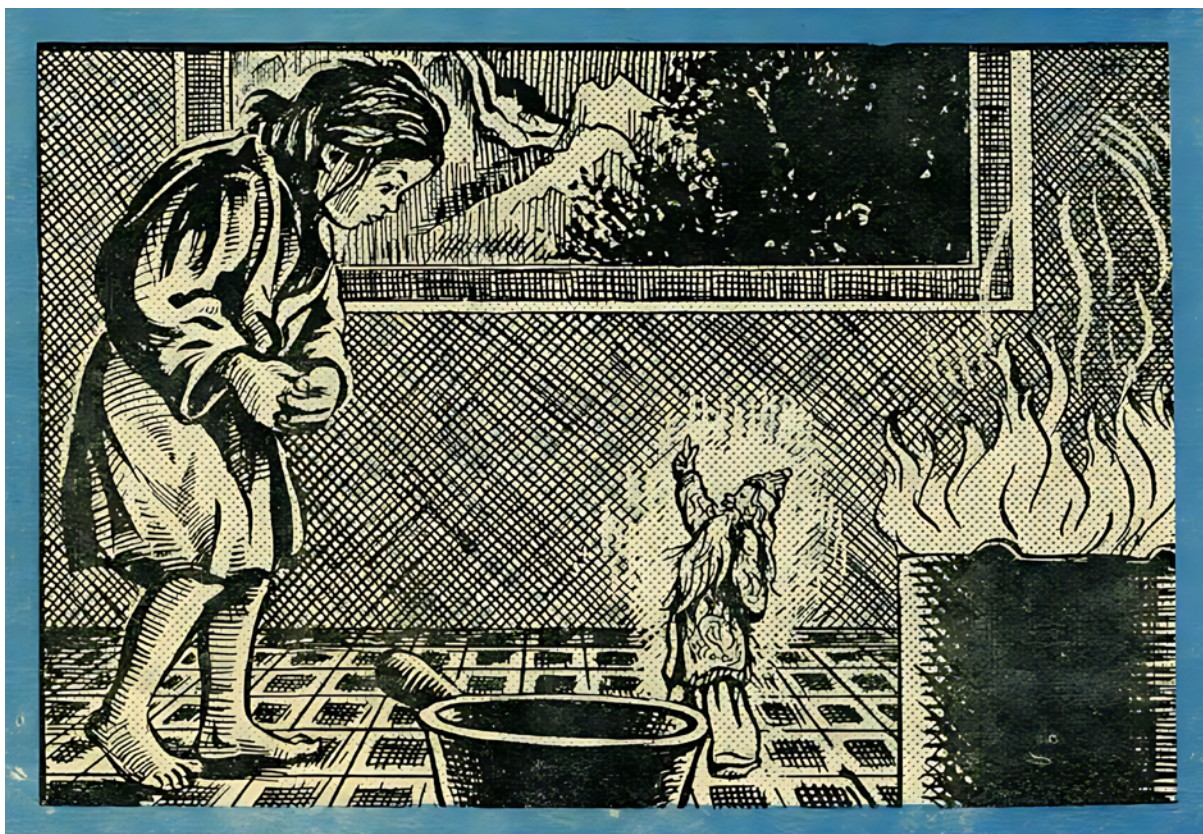
अच्छी तरह जानता हूँ। तू बहुत अच्छा लड़का है। सुन ! काञ्चनगङ्गा के ऊपर एक चोटी दिखाई देती है न? जो उस पर चढ़ कर भगवान के चरणासृत की तीन बूँदें उस नदी में डाल देगा उसके लिए वह नदी सोने की बन जाएगी। लेकिन औरों के लिए वह मामूली नदी ही बनी रहेगी। लेकिन याद रख ! जो उस नदी में अपवित्र जल गिराएगा वह काला पत्थर बन जाएगा। समझ में आ गया न !" यह कह कर वह बौना नन्द के मुँह खोलने के पहले ही अँगीठी में कूद कर गायब हो गया।

सुन्द और उपसुन्द जब घर छोटे तो देखा कि सोने की थाली गायब है। दोनों ने मिल कर नन्द को खुब पीटा। तब नन्द ने रोते-चिल्लाते बौने की सारी कहानी उन्हें सुना दी। उसने काञ्चनगङ्गा के बारे में जो कुछ सुना था वह भी बता दिया। पहले तो दोनों भाइयों ने उसकी बातों पर विश्वास नहीं किया। लेकिन पीछे सोचा कि शायद सच कह रहा हो। तुरन्त दोनों भाइयों के मन में लोभ पैदा हुआ। लेकिन वह किसी एक के लिए ही सोना बन सकती थी ।

इसलिए अब दोनों में झगड़ा होने लगा। खूब मुक्का-मुक्की हुई । लेकिन सुन्द बलवान था। इसलिए

उसी की जीत हुई और आख़िर वही अब अपना भाग्य आजमाने चला।लेकिन उसको पवित्र तीर्थ-जल कहाँ से मिले? उसने पुजारी से जाकर माँगा। लेकिन पुजारी ने उसको पापी समझ कर जल देने से इनकार कर दिया। तब सुन्द ने तीर्थ-जल की कलश चुरा ली। फिर एक टोकरी मैं खाने-पीने की चीज़ें रख कर, कलश हाथ में लेकर, वह पहाड़ पर चढ़ने लगा।

थोड़ी दूर तक तो वह खूब जल्दी जल्दी चढ़ा। छेकिन आगे जाकर चट्टानों पर काई जमी हुई थी। पैर फिसलने लगे। अगर वह जरा भी चूक जाता तो फिर खैर न थी। दोनों ओर गहरी खाई थी। इतने में उसके हाथ

से टोकरी छूटी और खड्ड में जा गिरी। अब हाथ में सिर्फ जल की कलश रह गई। एक घण्टे की चढ़ाई के बाद सुन्द को जोर की प्यास लगी। कलश में जल था। उसने सोचा- "मेरे काम के लिए तीन बूँदें काफी हैं। थोड़ा सा पी लूँ तो हर्ज क्या है ?" उसने कलश मुँह से लगाई। इतने में उसे एक प्यास से अधमरा कुत्ता दिखाई दिया। वह जीभ लपलपाता दीनता से उसकी तरफ देख रहा था। सुन्द ने उसे एक लात मारी और अपनी प्यास बुझा कर आगे बढ़ा।

एक घण्टा और बीत गया। धूप में चट्टानें तपने लगीं। पैर भी जलने लगे। उसे फिर प्यास लगी। कलश में जल सिर्फ आधा बच रहा था। उसने उसे मुँह से लगाया। इतने में जलती चट्टानों पर उसे एक नन्हा सा बच्चा दिखाई दिया। वह प्यास से मर रहा था। लेकिन सुन्द ने उसकी ओर से मुँह फेर लिया और अपनी प्यास बुझा कर आगे बढ़ा।

चढ़ाई मुश्किल होती जा रही थी । लेकिन मञ्जिल दूर न थी। हाँफते हुए, कदम-कदम पर रुकते हुए, सुन्द आगे बढ़ा। राह में उसे एक बूढ़ा दिखाई दिया। वह दम तोड़ रहा था और "पानी पानी !" चिल्ला रहा था।

"तू जीकर और क्या करेगा ?" यह कहते हुए सुन्द उसे लाँघ कर आगे बढ़ा।

इतने में आसमान में अँधेरा छा गया और बादल गड़गड़ाने लगे। नीचे काञ्चनगङ्गा चट्टानों से टकराती भागी जा रही थी। सुन्द ने तीर्थ-जल की कलश नदी में डाल दी। तुरन्त उसका बदन ऐंठने लगा और वह सुध-बुध खोकर काले पत्थर के रूप में लुढ़कता नदी में जा गिरा।

जब दिन ढल जाने पर भी बड़ा भाई लौट कर नहीं आया तो नन्द को बड़ी चिन्ता हुई। लेकिन उपसुन्द फूला न समाया। उसने

सोचा- "शायद तीर्थ-जल चुराने के कारण उसका बड़ा भाई पत्थर बन गया है।" इसलिए उसने नन्द के पास से बचे-खुचे पैसे छीन कर एक बदमाश पुजारी से तीर्थ-जल खरीद लिया और एक टोकरी में खाने पीने की चीजें लेकर पहाड़ पर चढ़ने चला।

उपसुन्द को भी अपने बड़े भाई की तरह चढ़ने में बहुत मुश्किल हुई। थोड़ी दूर जाने पर उसे भी एक प्यासा बच्चा दिखाई दिया। लेकिन वह भी बच्चे को पानी दिए बिना ही अपनी प्यास बुझा कर आगे बढ़ा। और थोड़ी दूर जाने पर एक प्यासे बूढ़े ने उससे भी पानी माँगा। लेकिन उसने पानी न दिया। आगे जाने पर उसे अपना भाई सुन्द राह में पड़ा दम तोड़ता दिखाई दिया।

"प्यास ! प्यास ! एक बूँद पानी देकर मेरी जान बचाओ !" सुन्द ने गिड़गिड़ा कर कहा। "वाह ! क्या मैं इतनी दूर से ढोकर तेरे लिए ही तीर्थ-जल लाया हूँ ?" यह कह कर उपसुन्द उसे लात मार कर आगे बढ़ चला।

थोड़ी देर में वह भी चोटी पर पहुँच गया। लेकिन कलश में का पानी नदी में डालते ही वह भी पत्थर बन कर नीचे लुढ़क गया। जब उपसुन्द भी लौट कर नहीं आया तो नन्द खुद
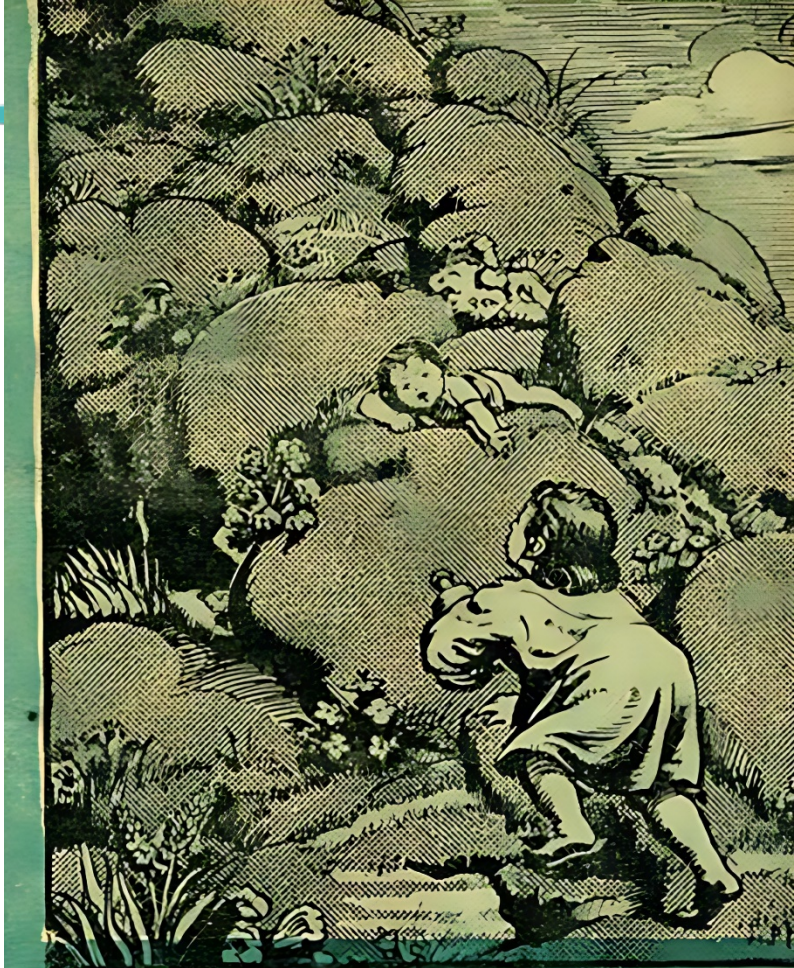
पहाड़ पर चढ़ने चला। एक पुजारी ने उसे माँगते ही तीर्थ-जल दे दिया। वह भी एक टोकरी में खाने-पीने की चीजें लेकर ऊपर चढ़ने लगा। लेकिन अभी वह बच्चा ही था न ? इसलिए चढ़ने में बड़ी मुश्किल हुई। टोकरी कभी की गिर गई। उसे भी प्यास लगने लगी। उसने सोचा कि थोड़ा सा पानी पी लूँ। इतने में एक बूढ़े ने पानी माँगा। नन्द ने कलश उसके हाथ में देकर कहा-"दादा! सभी मत पी जाना !" लेकिन बूढ़े के पीने पर कलश में बहुत कम पानी बच रहा। इसलिए नन्द अपनी प्यास बुझाए बिना ही आगे बढ़ा। अब उसे चढ़ाई आसान मालूम हुई। कहीं कहीं हरी हरी घास भी दिखाई दी। एक घण्टे बाद नन्द को फिर प्यास

लगी। उसने कलश में मुँह लगाना चाहा। लेकिन इतने में उसे एक प्यासा बच्चा रोता दिखाई दिया। नन्द ने खुद पानी पिए बिना ही कलश बच्चे के मुँह से लगा दी। बच्चे ने उसे करीब करीब खाली कर दिया।

और एक घण्टा बीत गया। अब पहाड़ पर चारों ओर फूल-पौधे दिखाई दिए। उनकी सुगन्ध से सारा पहाड़ गमगमा उठा। नन्द को फिर प्यास लगी। लेकिन कलश में दस पन्द्रह बूँदों से ज्यादा पानी न था। अगर वह पानी पी लेता तो नदी में डालने के लिए क्या बचता ? इसलिए उसने पानी नहीं पिया । इतने में उसे एक प्यासा कुत्ता आखिरी साँस गिनता दिखाई दिया। "सोना मिले या न मिले; इस कुत्ते की जान तो बचा लूँ !" यह सोच कर नन्द ने कलशी का बचा खुचा जल कुत्ते के मुँह में डाल दिया। तुरन्त कुत्ता उठ बैठा और दुम हिलाता भाग गया। अन्त में नन्द चोटी पर तो पहुँच गया था; लेकिन उसके पास तीर्थ-जल न था । इतने में उसे पास ही एक पौधे में एक सफेद फूल खिला दिखाई दिया। उसकी पंखुड़ियों पर ओस की तीन बूँदें झलमला रही थीं। नन्द ने सावधानी से वह फूल तोड़ लिया और ओस की बूँदों सहित नदी में डाल दिया।

शाम को घर लौटने के बाद नन्द ने देखा कि काञ्चनगङ्गा की एक धारा अपना रुख बदल कर सोने की घाटी में से बह रही है। उस के पानी से सिंच कर वह सूखी घाटी फिर हरी-भरी हो गई। फिर बगीचों में फल लग गए, खेतों में अन्न उपजने लगा और सब जगह हरियाली छा गई। सोने की घाटी सचमुच सोने की घाटी बन गई।

नन्द अपने भाइयों की सारी जायदाद का मालिक बन गया। उसने किसानों और मजदूरों से बहुत अच्छा बर्ताव किया। दान-पुण्य करने के कारण थोड़े ही दिनों में उसका नाम चारों ओर फैल गया।

जानकी और वासन्ती दो बहनें थीं। एक बार जब खिलौनों का त्यौहार आया तो दोनों बहिनें अपने अपने खिलौने काठ की एक बड़ी सी चौकी पर कतारों में सजाने लगीं। अब सवाल यह उठा कि बीच में कौन सी मूर्ति रखी जाए ?

जानकी कहती थी- सरस्वती की मूर्ति रखी जाए और वासन्ती कहती थी- लक्ष्मी की। बस, दोनों में झगड़ा हो गया। जानकी ने कहा- लक्ष्मी से सरस्वती कहीं अच्छी है और वासन्ती ने कहा-सरस्वती से लक्ष्मी अच्छी है।

कुछ देर तक दोनों बहनें आपस में इसी तरह लड़ती रहीं । अन्त में जानकी ने कहा- "अच्छा, मैं एक किस्सा सुनाती हूँ। सुन लो; फिर पीछे तुम जैसा कहोगी वैसा ही करेंगे।" जानकी ने किस्सा शुरू कर दिया- "सुनो- जिस बात पर अभी हम झगड़ रहे हैं, उसी बात पर एक बार खुद लक्ष्मी और सरस्वती में भी झगड़ा हो गया था। दोनों कहने लगीं - "मैं ही दुनिया में रहने वालों का ज्यादा उपकार करती हूँ।"

आखिर लक्ष्मी ने कहा- "अच्छा,चलो! मैं अपना प्रताप तुम्हें दिखाती हूँ।" यह कह कर लक्ष्मी उठ खड़ी हुई और उसके पीछे पीछे सरस्वती भी चली।

इस तरह चलतीं चलतीं दोनों एक घने जङ्गल में जा पहुँचीं। उस जङ्गल में एक शिकारी रहता था। वह जङ्गली जानवरों का शिकार करके उनके खाल उधेड़ कर

नजदीक के एक शहर में ले जाकर बेच देता था। यही उसका पेशा था।

उसके लिए "काला अक्षर भैंस बराबर" था। वह बड़ा उजड्डु और गँवार आदमी था। देखने में भी बड़ी भद्दी सूरत थी उसकी। उसे देख कर लक्ष्मी हँसने लगी अपनी महिमा दिखाने के लिए उसने उसे ही चुन लिया।

लक्ष्मी की कृपा होते ही उस शिकारी की हालत एक दम बदल गई। देखते देखते उसकी टूटी-फूटी झोंपड़ी एक सुन्दर रङ्गमहल में बदल गई। अब वह धन-दौलत में लोटने लगा। उसकी सूरत भी बदल गई और वह कामदेव जैसा सुन्दर हो गया।

शिकारी जिस जङ्गल में रहता था, उसके एक छोर पर एक शहर बसा था। उस शहर का राजा एक दिन जङ्गल में शिकार खेलने आया और संयोगवश शिकारी पर उसकी नजर पड़ गई। उसकी सुन्दरता देख कर वह चकित रह गया और किसी न किसी तरह उसे राजी करके अपनी राजधानी में ले गया।
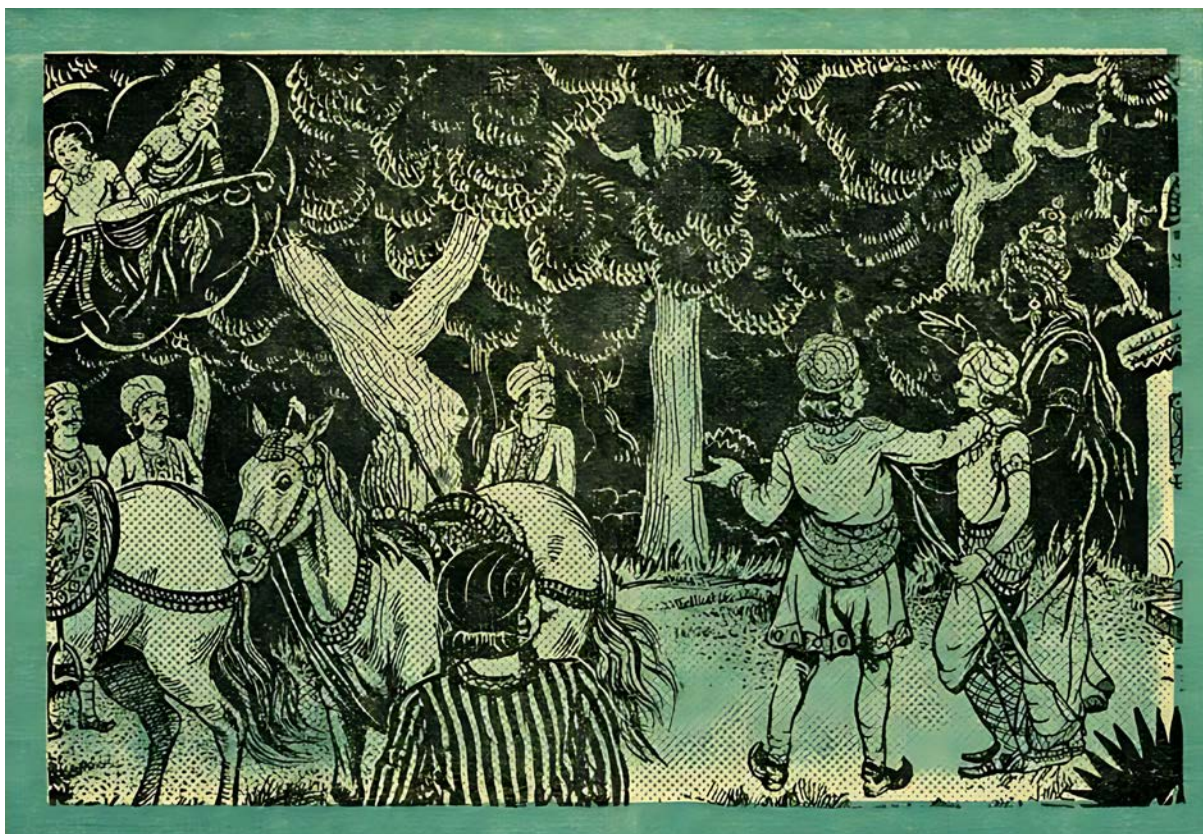
राजा ने बड़े प्रेम से शिकारी का नाम "मनोहर" रख दिया। उस राजा की इकलौती बेटी का नाम था स्वर्ण-कुमारी। वह शिकारी को देखते ही उस पर मुग्ध हो गई। राजा भी मन ही मन सोचने लगा कि दोनों का व्याह कर दिया जाए तो बड़ा अच्छा हो।

एक दिन लक्ष्मी ने मनोहर के सामने प्रगट होकर कहा -"देखो, मनोहर ! मैं लक्ष्मी हूँ। मेरी ही कृपा से तुम्हारी तकदीर पलट गई और तुम उस जङ्गली झोंपड़ी से छुट्टी पा कर इस उच्च-दशा को प्राप्त हुए। जब तक मैं तुम्हारे साथ हूँ तब तक तो तुम्हें किसी चीज़ की कमी न होगी। लेकिन ज्यों ही मैं तुम्हें छोड़ कर चली जाऊँगी, तुम फिर पहले की तरह हो जाओगे !"

"मैया ! ऐसी हालत में मैं तुमसे एक विनती करना चाहता हूँ। वह यह है- जब तुम मुझे छोड़ कर जाने लगो तो कृपा कर मुझे पहले ही बता देना। इससे ज्यादा मैं और तुमसे कुछ नहीं माँगता।" मनोहर ने हाथ जोड़ कर कहा। लक्ष्मी ने भी उसकी बात मान ली।

दूसरे दिन जब राजा अपने दरबार में गद्दी पर बैठा था तो मनोहर सीधे उसके पास गया और सिर से उसका मुकुट उतार कर बाएँ पाँव से उसे एक लात मारी। राज- मुकुट लुढ़कता हुआ थोड़ी दूर जाकर गिरा। यह देख कर दरबारियों को ऐसा गुस्सा आया कि सब के सब तलवार खींच कर मनोहर को मारने दौड़े। लेकिन राजा ने उन्हें रोक कर कहा - "ठहरो! जरा सोच-विचार लो ! सम्भव है, इसमें कोई रहस्य छिपा हो।" इतने में लोग देखते क्या हैं कि जमीन पर पड़े हुए मुकुट के

अन्दर से एक भयङ्कर साँप फुफकारते हुए निकला। सिपाहियों ने झट उसे मार डाला। अब लोगों की समझ में मनोहर एक महात्मा बन गया और चारों तरफ से उसकी वाह-वाही होने लगी।

यह खबर सुन कर मनोहर पर राज-कुमारी का प्रेम और भी बढ़ गया। राजा ने भी निश्चय कर लिया कि जल्दी ही दोनों का ब्याह कर दिया जाए।

दूसरे दिन आधी रात को मनोहर उठा और राजा के सोने के कमरे की तरफ चला। यह देख कर पहरा देने वाले उसके पीछे लग गए। मनोहर सीधे कमरे में गया और एक हाथ से राजा का हाथ और दूसरे से रानी का झोंटा पकड़ कर उनको पलङ्ग पर से बाहर घसीट लाया। यह देख कर पहरेदार आग-बबूला हो गए और चाहा कि तुरन्त तलवार से उसकी बोटी-बोटी उड़ा दें। लेकिन राजा ने फिर उन्हें रोक दिया। इतने में एक धमाके की आवाज हुई और राजा के महल की छत ढह कर गिर पड़ी। अब वहाँ ईंट-पत्थरों के ढेर के सिवा और कुछ दिखाई न देता था।

सबेरा होते ही यह खबर सारे शहर में फैल गई। अब लोगों को पूरा विश्वास हो गया कि मनोहर में सचमुच कोई अलौकिक शक्ति है। अब वे उसकी और भी बड़ाई करने लगे।

दूसरे दिन राजा बड़े ठाट-बाट के साथ शिकार खेलने गया। दोपहर तक शिकार खेलते खेलते वह बहुत थक गया और आराम करने के लिए एक पेड़ की छाँह में लेट गया। लेटते ही उसे नींद आ गई। उस पेड़ पर एक गिद्ध एक काले नाग को नोच खा रहा था। उस साँप के मुँह से जहर की बूँदें चूकर सीधे राजा के गले पर टपक पड़ीं।

मनोहर बैठा बैठा यह सब देख

रहा था। वह उठ कर अपनी तलवार से जहर की वे बूँदें पोंछने लगा। दूर पर बैठे सिपाहियों ने समझा कि मनोहर राजा का खून कर रहा है। वे तलवार खींच कर दौड़ आए और मनोहर को चारों तरफ से घेर लिया। शोर-गुल सुन कर राजा की नींद टूट गई। उसने सबको खरी-खोटी सुना कर वहाँ से हटा दिया।

उस दिन घर लौटते ही राजा ने निश्चय कर लिया कि जल्द-से-जल्द मनोहर का ब्याह हो जाना चाहिए। बड़े-बड़े पण्डित-ज्योतिषी पोथी-पत्रों के साथ आए और व्याह का लग्न ठीक हो गया।

ब्याह के पहले की रात को लक्ष्मी मनोहर से विदा लेकर चली गई। लक्ष्मी के जाते ही बेचारा मनोहर घबरा गया। उसे कोई उपाय न सूझा। उसने सोचा -"इन राजाओं का क्या विश्वास ? अब तक तो लक्ष्मी की कृपा से काम चलता गया। लेकिन अब आगे यहाँ रहूँगा तो जान पर आ बनेगी। यह सोच कर उसने स्वर्ण-कुमारी के कुछ गहने चुरा लिए और उन्हें एक गठरी में बाँध कर रातों रात वहाँ से भाग निकला।

दूसरे दिन जब इसका पता चला तो राज भर में हलचल मच गई। खास
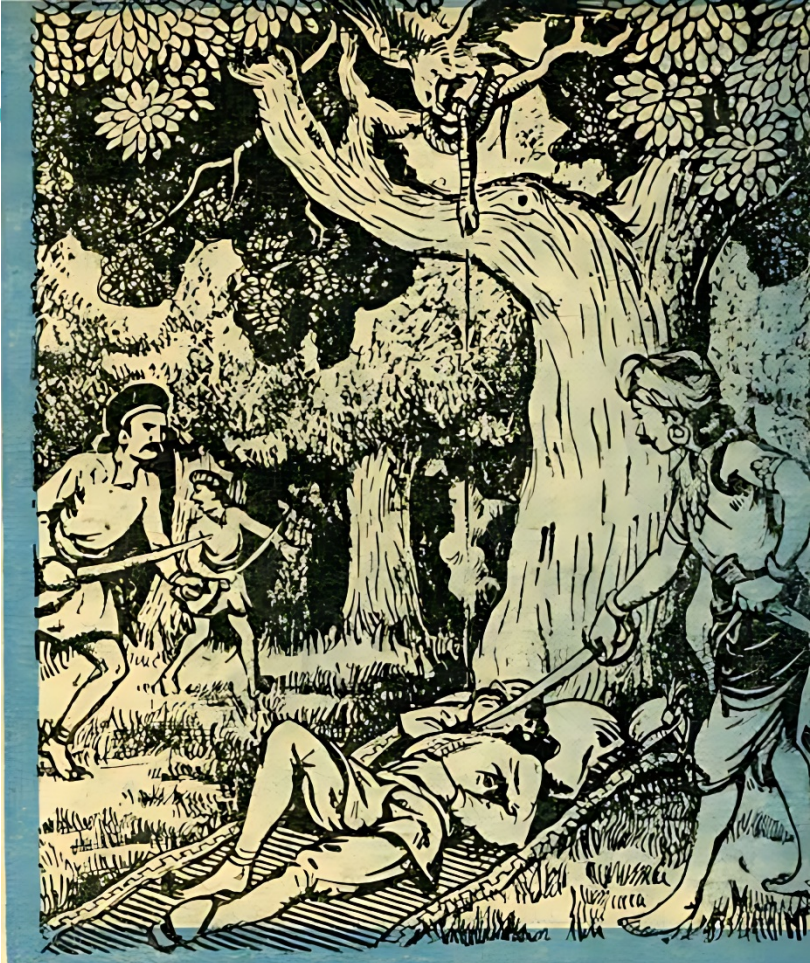
कर राजकुमारी के शोक का ठिकाना न रहा। मनोहर का पता लगाने के लिए घुड़सवार चारों ओर दौड़ाए गए।

उधर सरस्वती ने लक्ष्मी से पूछा- "क्या यह उचित है ? अपने भक्त को मँझधार में ले जाकर डुबा देना – क्या यही तुम्हारी कृपा कहलाएगी?"

लक्ष्मी ने हँस कर जवाब दिया- "तो मैं क्या करूँ ? क्या मैं उसकी पत्नी हूँ जो हमेशा उसके पीछे पीछे घूमती फिरूँ? वह अपना हाल आप देखे ! अगर तुम उसकी कुछ मदद कर सकती हो तो करो ! मैंने तो उससे अपना हाथ धो लिया है।"

तब सरस्वती सीधे मनोहर की झोंपड़ी में गई और उस पर अपना प्रभाव फैलाया। इतने में राजा अपने सिपाहियों के साथ मनोहर को ढूँढ़ते हुए वहाँ आ पहुँचा। उसे देखते ही मनोहर ने अचम्भे के साथ कहा- "आप इतना कष्ट उठा कर यहाँ तक क्यों आए ? कल सवेरे मैं खुद वहाँ आ जाता न ?"

"अगर तुम कल ही लौटने वाले थे, तो ये गहने सब क्यों उठा लाए थे?" राजा ने पूछा।

"ओह ! तो आप इसलिए यहाँ आए हैं ? क्या आपने मुझ को एक चोर समझ लिया ? क्या मुझ पर आपका इतना ही विश्वास था ? सच्ची बात सुन लीजिए - बात यह है कि हमारे यहाँ एक रिवाज है। जिस रोज ब्याह होने वाला हो उसकी पिछली रात दुल्हे को दुलहिन के गहने चुरा कर भाग जाना पड़ता है। मैंने सोचा कि आप लोगों के यहाँ भी यही रिवाज चलता होगा। इसलिए मैंने आपसे कुछ नहीं कहा। नहीं तो पहले ही आपको बता देता।" मनोहर ने जवाब दिया।

उसका जवाब सुन कर राजा बहुत खुश हुआ और बड़े प्रेम से उसे अपने साथ ले गया। राजकुमारी के साथ धूम-धाम से उसका व्याह हो गया। फिर सरस्वती की कृपा से वह बड़ा विद्वान और बुद्धिमान बन गया। जिन्दगी भर उसे किसी चीज़ की कमी न हुई।

पूरा किस्सा सुनाने के बाद जानकी ने वासन्ती से कहा-"सुन लिया न ? लक्ष्मी बड़ी चञ्चल होती है। वह किसी के पास टिकने वाली नहीं। उस पर भरोसा रखना बालू की भीत खड़ी करना है। आड़े वक्त में हर एक के काम आने वाली सरस्वती ही है; लक्ष्मी नहीं। बोलो; इस बारे में अब तुम्हारी क्या राय है?"

किस्सा सुन कर वासन्ती का मन भी बदल गया था। उसने भी जान की की बात मान ली।

नौका - विहार